पड़ोसी

तथा

अन्य चुनी हुई कहानियाँ

लेखक

श्रीनाथसिंह

प्रकाशक

नेशनल लिटरेचर कम्पनी

कलकत्ता

प्रकाशक—
विजय शुक्ल
नेशनल लिटरेचर कम्पनी
१०५, काटन स्ट्रीट,
कलकत्ता।

प्रथम बार
सन् १९४०
मूल्य १।=)

मुद्रक—
विष्णुदत्त शुक्ल,
"शुक्ल प्रेस"
७-१, बाबूलाल लेन,
कलकत्ता।

समर्पण

पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी एम० एल० ए०,
भूतपूर्व पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी यू० पी० सरकार

पूज्यवर,

आप हिन्दीके सिद्ध पत्रकार, लेखन स्वातंत्र्यके प्रचारक और हिन्दी की मर्यादाके निर्भीक रक्षक हैं। आपके चरणोंके निकट बैठकर मैंने बहुत कुछ सीखा है। आपके आशीर्वादसे मुझे अपने साहित्यिक जीवनमें बहुत बल मिला है। अतएव मैं अत्यन्त श्रद्धापूर्वक अपना यह कहानी-संग्रह आपको भेंट करता हूँ।

विनीत
श्रीनाथसिंह

दो शब्द

गत वर्ष 'नेशनल लिटरेचर कम्पनी' ने एक विज्ञप्ति द्वारा हिन्दीमें उपयोगी और सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित करनेका विचार प्रकट किया था और उसके लिये विद्वानोंके सहयोगकी प्रार्थना भी की थी। हम यह कृतज्ञता और हर्ष पूर्वक स्वीकार करते हैं कि हमारी प्रार्थना पर विद्वज्जनों ने कृपापूर्ण ध्यान दिया और अपनी रचनाओं, सत्परामर्शों आदिके द्वारा हमें उपकृत किया। एतदर्थ हम उन्हें हृदयसे धन्यवाद देते हैं।

विज्ञप्ति प्रकाशित करनेके बादसे ही हम प्रकाशन-सम्बन्धी तैयारीमें लग गये थे परन्तु अचानक युद्धके छिड़ जाने तथा कतिपय अन्य अनिवार्य कारणोंसे प्रकाशनका कार्य शीघ्र आरम्भ न किया जा सका। अब हम प्रथम बार हिंदीके प्रसिद्ध लेखक ठाकुर श्रीनाथसिंहकी कहानियोंका संग्रह 'पड़ोसी' सर्वसाधारणकी सेवामें अर्पित कर रहे हैं।

इस पुस्तकके प्रकाशन, कागज, छपाई, सफाई आदिमें हमने सौंदर्य का पूरा पूरा ख्याल रखा है और इसे सब प्रकारसे आकर्षक बनानेका प्रयत्न किया है। इसलिये और इसलिये भी कि आजकल कागजों आदि का मूल्य अत्यधिक बढ़ गया है, इस पुस्तकका मूल्य हम उतना कम नहीं रख सके जितना रखना चाहते थे। फिर भी हम विश्वास दिलाते हैं कि

परिस्थितियोंके अनुकूल होते ही हम अपनी पुस्तकोंका मूल्य नियंत्रित करनेकी भरपूर चेष्टा करेंगे।

प्रकाशनके सम्बन्धमें भी हमें दो शब्द निवेदन करने हैं। हमारा उद्देश्य गम्भीर तथा मृदु—दोनों प्रकारका साहित्य प्रकाशित करना है और यद्यपि हम मृदु साहित्यके प्रकाशनसे आरम्भ कर रहे हैं तथापि शीघ्र ही गम्भीर साहित्यके प्रकाशनमें भी हाथ लगाना चाहते हैं।

इस प्रकार अपने प्रकाशनको हम सर्वाङ्गीण सुन्दर एवं उपयोगी बनाने का पूरा प्रबन्ध कर रहे हैं। इस कार्यमें हम सूखी व्यापारिकतासे ही नहीं साहित्य भावनासे भी काम ले रहे हैं। इसलिये हमें आशा है कि हम अपने प्रयत्नमें साहित्य-सेवियों और जनसाधारण—दोनोंका सहयोग प्राप्त कर सकेंगे।

कलकत्ता,
१ अगस्त १६४०

व्यवस्थापक,
नेशनल लिटरेचर कम्पनी।

भूमिका

हिन्दीके वर्त्तमान कहानी-लेखकोंमें ठाकुर श्रीनाथसिंहका प्रमुख स्थान है। वे सीधी तथा सुलझी हुई भाषामें कहानियां लिखनेके लिये प्रसिद्ध हैं। हिन्दीका शायद ही ऐसा कोई प्रमुख पत्र या पत्रिका होगी जिसमें ठाकुर श्रीनाथसिंहकी कहानियां आदरके साथ न प्रकाशित होती हों और हमारे कहानी-प्रेमी पाठक उन्हें प्रेमसे न पढ़ते हों।

ठाकुर साहब एक अर्सेसे हिन्दीकी सेवा करते आ रहे हैं। उनके हिन्दी-प्रेम तथा हिन्दी-सेवासे हिन्दी-संसार एवं हिन्दी-प्रेमी भलीभांति परिचित हैं। अबतक उन्होंने अनेकों उपयोगी पुस्तकें, सुन्दर उपन्यास और कितनी ही भावपूर्ण कहानियां लिखकर हिन्दी-साहित्यकी श्री वृद्धिकी है और कर रहे हैं।

ठाकुर साहब सीधी-सादी प्रकृतिके निस्पृह व्यक्ति हैं। वे इस बातके मोहताज नहीं हैं कि लोग उनकी प्रशंसा करें और उनकी चीजोंपर उन्हें दाद दें। जो उनकी दृष्टिमें उचित और न्याय संगत होगा वही निस्संकोच भावसे कह देना और लिख देना ठाकुर साहबका खास गुण है। भले ही इससे कोई नाराज हो या खुश।

ग्रामीण-जीवन, ठाकुर साहबकी कहानियोंका प्रधान विषय रहता है। इन सीधी-सादी कहानियोंमें आपको हमारे गांवोंमें रहनेवाले भोले-भाले किसानोंके सात्विक जीवनकी सच्ची झलक मिलेगी। ये कहानियां

भावोंसे इतनी ओत-प्रोत रहती हैं कि पढ़ते २ आपकी आंखें सजल हुए बिना न रहेंगी। सबको अन्न देने वाले अन्नदाता किसानोंको किन मुसीबतोंके साथ अपने दिन गुजारने पड़ते हैं—उनपर दुर्दान्त जमीन्दारों के किस प्रकार आये दिन अत्याचार होते रहते हैं, आदि हृदय-स्पर्शी घटनाओंके कारुणिक चित्र आपकी आंखोंके सामने खिंच जायेंगे—आप द्रवित हुए बिना न रहेंगे।

'पड़ोसी' ठाकुर साहबकी चुनी हुई मौलिक कहानियोंका सुन्दर संग्रह है। सभी कहानियां भावपूर्ण और हृदयपर असर करने वाली हैं। आशा है कहानी-प्रेमी 'पड़ोसी' को प्रेमसे अपनायेंगे।

कलकत्ता,
१ अगस्त १९४० — विजय शुक्ल

क्रम

पड़ोसी

'भूख ! भूख !! भूख !!! जब देखो तब भूख । आदमी नहीं पूरे शनीचरने हमारे घरमें औतार लिया है ।' कहते हुए गनेशकी माने उसके गाल पर कसकर एक तमाचा रसीद कर दिया । इतने ही से उस औरत का गुस्सा कम न हुआ । पास ही में पड़े चारपाईके एक टूटे पावेको उठा कर वह उसे मारने दौड़ी और बोली—जा ! मेरी आंखोंके सामनेसे दूर हो नहीं तो अभी तुझे पीटकर हमेशाके लिए ठंढा कर दूंगी ।

बेचारा लड़का घबड़ा उठा । इसमें शक नहीं कि माने उसे पहले भी डाटा डपटा था पर इस तरह उसपर अचानक हमला कभी नहीं किया था । और अवसरों पर माके नाराज होने पर वह जमीनमें लोटने लगता था या जोर जोरसे रोने लगता था पर आज उसे अपनी पुरानी कला भूल

गई । प्रथम बार गर्दन पर छुरी पड़ने पर जैसे कोई बकरा चिल्लाता है वैसे ही एक चीख छोड़कर गनेश घरसे बाहर निकल गया और पिछवाड़े की तरफ दीवालसे चिपक कर खड़ा हो गया ।

यह वह जगह थी जहां लड़कोंके साथ आंखमिचौनी खेलते समय वह आ कर खड़ा होता था और लड़के उसे खोज नहीं पाते थे । पर आज उसमें वह उमङ्ग नहीं थी । शायद इतना उदास और भयभीत वह पहले कभी नहीं हुआ था ।

गनेशके चले जानेपर मा अपने काममें लग गई । पांच बजे तड़के ही उठकर वह उस दिनके खानेके लिये चने पीस चुकी थी, चूल्हा पोत चुकी थी, बर्तन मांज चुकी थी, एक बैल था उसे थोड़ासा सूखा भूसा खिलाकर हलमें जुतनेके लिए भेज चुकी थी और अब घरका कूड़ा उठा कर खेतमें डालनेके लिए ले जा रही थी । इस बीचमें यह कांड हो जानेसे थोड़ासा कूड़ा आंगनमें बिखर गया था । वह बैठ कर उसे उठाने लगी । पर उस काममें उसका जी न लगा । वहीं बैठी बैठी वह इस बातका इन्तजार करने लगी कि गनेशके रोनेकी आवाज आये तो फिर वह उसे दौड़ कर मारे । सारे गांवमें यह चर्चा है कि गनेश बहुत खब्बू है । इसके सामने खाना रख दो तो तब तक खाता जायगा जब तक उसका पेट फट न जायगा । इसीलिए वह तन्दुरुस्त नहीं होता, इसीलिए वह हमेशा बीमार-सा बना रहता है । अब वह जरूर सख्ती करेगी और लड़केकी यह आदत छुड़ा देगी ।

इस तरह सोचते सोचते जब जरा देर हो गई और गनेशके रोनेकी आवाज न आई तब उसे कुछ शंका हुई । कहीं उसे ज्यादा चोट न आ

गई हो या कहीं वह भग न गया हो । वह घरके बाहर निकली । दरवाजे पर एक बछिया बँधी थी, जिसे गनेशका बाप दूसरे गांवसे चौदह आनेमें खरीद कर लाया था । जिस दिन वह बछिया आई थी उस दिन गनेशकी मांने उसके माथे पर हल्दीका एक टीका लगा दिया था उसका कुछ कुछ निशान अभी बना था । उस बछियाका नाम उसने रक्खा था—लक्ष्मी । उसका ख्याल था कि जब यह बछिया बड़ी होगी और दूध देने लगेगी तब घरकी हालत बहुत कुछ सुधर जायगी । घी बेचनेसे देन बहानका काम चलेगा और सबको भर पेट मट्ठा खानेको मिलेगा । गनेशको कभी कभी दूध या घी भी मिल जाया करेगा । इस तरह उसके भी दिन आयेंगे ।

अपनी मलकिनको देखकर बछिया सिर हिलाने लगी और जब वह उसके पास पहुँची तब वह उसका हाथ चाटने लगी । वह बछिया भी अजीब थी । उसके शरीरमें पेट ही पेट था और वह जो पाती थी वह खाने लगती थी । कुछ नहीं पाती थी तब मिट्टी ही खाने लगती थी । हाथ चाटते चाटते बछियाने मालिकनकी धोती अपने मुँहमें भर ली । गनेशकी मांका ध्यान इधर नहीं था पर सामनेके पड़ोसीकी लड़की अपनी चौपालसे यह दृश्य देख रही थी । वह चिल्लाती हुई दौड़ी—"चाची ! चाची ! लक्ष्मी तुम्हारी धोती खा रही है । यह भी गनेशकी ही तरह खब्बू है । कल यह छूट गई थी । हमारे दादाकी पगड़ी इसने ऐसी चबाई है कि वह पोतना बनाने लायक हो गई है । इस तरह हम लोग कब तक बरदाश्त करेंगे । यह बछिया हमारे तुम्हारे परिवारमें बैर करावेगी ।"

यह सिर्फ छः सालकी लड़की थी । उसके मुँहसे बड़े बूढ़ोंकी ऐसी बातें गनेशकी माको बहुत अच्छी लगीं । उसने सोचा कि अगर बछिया

ने वास्तवमें कोई नुकसान किया होता तो उसका पड़ोसी जरूर उलहना देता। मुमकिन है कि उनके घरमें इस तरहकी बात हुई हो। पर छः साल की लड़की कितनी चतुर है और इधर उसका लड़का गनेश पन्द्रह साल का हो गया पर इतनी भी अकल नहीं रखता। ओफ ! यह क्या खायगा ! कैसे इसकी जिन्दगी कटेगी। सबके मा-बाप हमेशा नहीं रहते और हमारा तो और भी ठिकाना नहीं। वह बहुत चिन्तित हो उठी।

लड़कीने फिर कहा—चाची ! चुप क्यों हो। मेरी बातका बुरा मान गई हो क्या ?

गनेशकी माने उसे अपनी छातीसे चिपटा लिया और कहा—नहीं बेटी ! बुरा क्यों मानूंगी। बछिया किसीका नुकसान करेगी तो कड़ी बात तो सुननी ही पड़ेगी।

"इसे बांध कर रक्खो ! कहीं जाने न पावे। या गनेशसे कहो इसे ताकता रहे। क्या वह इतना भी नहीं कर सकता।"

लड़कीने गनेशकी माके मुखकी ओर देखा। उसकी आंखोंसे बड़े-बड़े आंसू छलक रहे थे।

"अरे ! चाची ! तुम रोती क्यों हो ? मैने तो कुछ नहीं कहा ?"

"कुछ नहीं बेटी।"

"तब क्यों रोती हो।"

"बेटी मैंने गनेशको आज मारा है। वह नाकमें दम किये है।"

"मारनेसे वह थोड़े ही सुधरेगा।" गनेशकी माने कोई उत्तर नहीं दिया।

"चाची ! तुम बोलती नहीं हो ! मैं जाती हूँ।"

"अच्छा बेटी जाओ ! इस समय मेरा चित्त ठिकाने नहीं है।"

लड़की उछलती कूदती अपने घर चली गई और गनेशकी मा वहीं जमीन पर बैठ गई। गांवके सब लड़के कितना खुश हैं। कैसा खेलते हैं। सिर्फ गनेश मनहूस बना बैठा रहता है और भूख भूख चिल्लाता है। आखिर इसका कारण क्या है ? इस समय उसे पश्चात्ताप भी हो रहा था। सबेरे सबेरे लड़केको इतना मारनेकी जरूरत नहीं थी। रोटी का एक टुकड़ा और नमक उसे रोज सबेरे मिलता है। आज भी वह वही मांग रहा था। पन्द्रह सालके लड़केके लिए यह बहुत नहीं है। फिर दोपहरमें भी उसे सूखी रोटी ही मिलती है। दाल कभी बनी कभी न बनी। पानीके घूंटोंके सहारे लीलता है। उसकी आत्मा कभी तृप्त नहीं होती। ऐसी हालतमें वह भूख भूख न चिल्लाये तो क्या हो ? थोड़ा खाना मिलनेसे या कभी कभी बिलकुल न मिलनेसे बड़े बूढ़े अपना धीरज नहीं छोड़ सकते और शायद बीमार भी नहीं पड़ सकते पर लड़के तो बिलबिला उठेंगे और बेकाम हो जायँगे। ऐसी हालतमें गनेशका क्या कसूर है ? कसूर उनका है जिन्होंने उसे जन्म दिया है और अब उसे भर पेट भोजन भी नहीं दे सकते।

माने अपनी गरीबी और पुत्रकी ऐसी हालत पर जितना ही सोचा इतना ही उसका दुःख बढ़ा। हाय ! कौन ऐसी मा होगी जो लड़केके रोटी मांगने पर उसे तमाचा लगायेगी। उस समय उसके जीमें आ रहा था कि धरती फट जाय तो वह उसमें समा जाय।

उसने गनेशको इधर-उधर ढूंढ़ना शुरू किया। उसका नाम ले लेकर जोर जोरसे पुकारा—गनेश ! गनेश !!

उस समय उसकी आवाजमें वैसी ही ममता थी जैसी उस गायकी आवाजमें होती है जो अपने बछड़ेके लिए रँभाती है। प्रेम और दर्दसे भरी मा की इस करुण पुकारकी गनेश उपेक्षा नहीं कर सका। वह उसके सामने आया और थोड़े फासलेपर चुपचाप चोरकी भांति खड़ा होगया।

माने उसके निकट पहुँच कर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—मेरे लाल! मेरा चित्त ठिकाने नहीं था। एक तो मैं खाली पेट सोई थी। दूसरे काम करते करते थक गई थी। रातको तो रोटी बनी नहीं थी। दोपहर की ही रोटीमें से शामको तेरे खानेसे जो बचा था वह मैंने तेरे लिए रख दिया था। पर करीब आधी रातको तेरे बाप आये और बोले कि अगर मुझे इस समय कुछ खानेको न दोगी तो मैं कल काम नहीं कर सकूंगा। मैंने वह रोटी उन्हें दे दी। दो कौर खानेके बाद उन्होंने पूछा कि गनेशके लिए कुछ रख दिया है न! मैंने कहा—'हां।' ऐसा न कहती तो वे शायद न खाते। बेटा! इसीसे आज कलेवा नहीं रखा। मुझे गुस्सा इसलिए आया कि तू घरकी हालत जानते हुए भी धीरज नहीं धरता। देख! पड़ोसीकी लड़की कितनी छोटी है पर कितना समझकी बात करती है। खैर जो हुआ सो हुआ! चल! ताजी ताजी रोटी बनाऊं! खा।

गनेश बड़े बड़े आंसू गिराने लगा। पर उसके मुँहसे बोल न निकले। लड़केको प्रसन्न करनेके जब सब उपाय निष्फल गये तब मा ने अन्तमें कहा—अच्छा बेटा! चल! इस बार जब फसल कटेगी और घरमें नया अनाज आयेगा उसी दिन मैं तुझको भरपेट मीठा भात खिलाऊंगी।

मा की इस बातका लड़केपर असर हुआ। उसके आंसुओंसे भीगे चेहरेपर मुसकानकी एक क्षीण रेखा दौड़ गयी और बोला—भरपेट मीठा भात खिलाओगी! भरपेट!

'हां! मेरे लाल! जितना खायगा उतना खिलाऊंगी।'

इस बातचीतके बाद मा ने एक सन्तोषकी सांस ली।

• • • •

गनेशके मा बापने अच्छे दिन देखे थे। यानी लड़कपनमें उन्हें भरपेट भोजन मिलता था और कभी कभी घी दूध भी मिल जाया करता था। वे अक्सर उन दिनोंकी चर्चा करते थे जब उनकी शादी हुई थी। लेकिन वह जमाना और था। तब गल्ला महंगा था इसलिये लगान देने और जरूरतकी चीजें खरीदनेके बाद भी किसानके लिये काफी बच रहता था। इधर जबसे गल्ला सस्ता हुआ उनका बजट कभी पूरा नहीं पड़ा। गनेशकी दो बड़ी बहनें थीं। उनकी शादीमें उन दिनोंका बचा धन ही नहीं खर्च करना पड़ा। उन्हें कर्ज भी लेना पड़ा। यदि महंगीका जमाना बना रहता तो शायद वे उस कर्जसे छुटकारा पा जाते पर अब तो सूद भी चुकाना मुश्किल हो रहा था। हालत यहांतक बिगड़ी कि उन्हें एक बैल बेच देना पड़ा और मरम्मत न हो सकनेसे मकानका एक हिस्सा गिर भी गया। मा ने कई बार चाहा कि लड़कियोंको कमसे-कम एक बार तो बुला लें पर ऐसे मौकोंके लिये जो जरूरी खर्च होता है वह भी न इकट्ठा हो सका इसलिये मा के इरादे मन हीमें रह गये। अपने दिलको ढाढ़स देनेके लिये वह अक्सर कहा करती थी कि गनेशकी शादीमें लड़कियोंको जरूर बुलाऊंगी। लेकिन

किसके पास फालतू लड़की थी जो उस निकम्मे लड़केके गलेमें मंढ़ जाता। धीरे-धीरे मा-बाप इस ओरसे भी फिर निराश हो गये। अपनी उम्रके लड़कोंमें सिर्फ गनेश ऐसा था जिसकी शादी न हुई थी। यद्यपि मा-बापने उसकी शादीकी आशा छोड़ दी थी तथापि वे कभी-कभी देवताओंसे इसके लिये विनती किया करते थे।

गनेशको उन्होंने कई बार पासके गांवके स्कूलमें पढ़नेके लिये भी बैठाला। पर वहांसे वह भाग भाग आता था। एक तो उसके पास और लड़कोंकी तरह तख्ती किताब नहीं थी दूसरे मास्टरोंने उसके साथ कोई हमदर्दी नहीं दिखाई। मुमकिन हो यही वजह हो; मुमकिन है कोई और। गनेशकी पढ़ाई बन्द हो गयी थी। गांवके लड़के उसे प्राय: पेटू कहकर चिढ़ाया करते थे। इसलिये वह उनके बीचमें बहुत कम खेलता था। ज्यों-ज्यों वह बढ़ता गया उसकी मुसीबतें भी बढ़ती गयीं। उसके हकमें अगर कोई अच्छी बात थी तो सिर्फ यह कि वह सोचने लगा था कि इस तरह मा बापकी कमाईपर कबतक बसर करूंगा। जिन्दा रहनेके लिये मुझे खुद भी तो कुछ न कुछ करना चाहिये।

जिन दिनों उसके दिलमें इस तरहके ख्याल उठने लगे थे उन्हीं दिनों वह बछिया आयी थी। गनेश मासे इजाजत लेकर उसे चरानेके लिये ले जाने लगा। उसे पकड़े-पकड़े वह खेतोंकी मेड़ोंपर और कटीली झाड़ियोंके इर्द-गिर्द घूमता और जबतक घरसे बाहर रहता भूख-प्यास भुलाये रहता। घर आनेपर फिर वह भूख-भूख चिल्लाता। कभी रूखी-सूखी रोटी पा जाता और कभी मा के हाथसे पिट जाता। और जब वह बहुत दु:खी होता मा उससे कहती—बस अब फसल कटने ही

वाली है। जिस दिन नया अनाज घरमें आयेगा उसी दिन मीठा भात बनाऊंगी।

मा की ऐसी बातोंसे उसके भूखसे मनहूस बने चेहरेपर थोड़ी सी खुशी फैल जाती और वह कहता, "भरपेट खाऊंगा।"

"हां! मेरे लाल! भरपेट!"

इस तरह दिन बीतते गये। लेकिन किसानके घरमें नया अनाज बहुत मुश्किलसे पहुँचता है। बाढ़, अनावृष्टि, जङ्गली जानवर, कीट-पतङ्ग, चोर और चिड़ियों वगैरहसे बचाता हुआ जब खलिहानमें किसान भूसेसे उसे अलग करता है तब महाजनकी शनिदृष्टि उसपर आ पड़ती है और उससे बचना उसके लिये प्राय: असम्भव हो जाता है।

गनेशके बापने जिस दिन खलिहानमें अपनी मेहनतको दानोंकी शकलमें इकट्ठा किया, महाजन जा पहुँचा और बोला—हमें जो देना है यहीं दे दो।

उस समय गनेशकी मा भी वहीं थी और गनेश दूर एक झाड़ीके पास इकट्ठे हुए आमके सूखे पत्तोंको उस बछियाको खिला रहा था। वह खुश था कि आज उसे मीठा भात खानेको मिलेगा। सबेरे ही उसने मा को इसकी याद दिलाई थी। आधा चैत बीत चुका था! अरहरके पेड़ भी कटकर खलिहानमें आ गये थे और खेतोंमें बंधनमुक्त होकर गाय बैल फैले हुए थे। सिर्फ गनेश अपनी बछियाको बांधे हुए था पर वह प्रेमवश। पासके महुएके पेड़से ताजे महुओंकी भीनी भीनी महक आ रही थी। दूर आमके पेड़पर कोयल बोल रही थी। किसान खलिहानोंमें खुश दिखाई पड़ते थे। प्रकृतिमें आनन्दकी लहर-सी दौड़

गयी थी। उस दिन गनेश भी खुश था क्योंकि उसे आशा थी कि उसे मीठा भात मिलेगा।

गल्ला तौला जाने लगा और महाजनका हिसाब हुआ। डेढ़ी और सवाई सब जोड़कर यह साबित हुआ कि अभी कमसे-कम तीन मन गल्ला और हो तो महाजनका हिसाब साफ हो जाय। गनेशके मा-बाप गल्लेमेंसे अपनी गुजरके लिये कुछ निकाल लेना चाहते थे पर महाजन उन्हें एक दाना भी छोड़नेको तैयार न था। अन्तमें बड़ी हुज्जतके बाद यह तय पाया कि यह गल्ला ये लोग महाजनको ले जाने दें और अगर इन्हें जरूरत हो तो उसके घरसे ले आवें।

गनेशके मा-बाप अपना मन मसोस कर रह गये और उनके देखते-देखते उनका गल्ला महाजनके घरमें ढोकर ले जाया जाने लगा। गल्लेकी रवानगी देखकर गनेश खलिहानकी ओर आया, बछियाको उसने भूसाके ढेरमें लगा दिया और मा के पास जाकर खड़ा हुआ।

उस समयका गम्भीर वातावरण देखकर गनेशको परिस्थितिके समझनेमें कुछ देर न लगी। वह समझ गया कि एक एक दाना महाजनके घरमें जा रहा है और मीठे भातकी बात कौन कहे सूखी रोटीका भी डौल मुश्किलसे लगेगा। वह एक दर्द-भरी आवाजमें बोला—

"अम्मा।"

'हां बेटा।'

'मैं मीठा भात नहीं खाऊंगा।'

मां वहीं बैठ गयी और लड़केको अपनी छातीसे चिपटाकर सिसक सिसक कर रोने लगी। महाजनको कुछ दया आ गयी और उसने तराजू-

के एक पलड़ेमें थोड़ा सा अनाज निकालकर गनेशकी मा के सामने रख दिया और कहा—यह गनेशके लिये है।

पर वह स्वाभिमानिनी किसानकी नारी थी। उसे किसीकी दयाका नहीं सिर्फ अपनी मेहनतका भरोसा था। उसने उस अनाजको महाजनके ढेरमें डाल दिया और कहा—साहुजी! गनेशके मा-बाप अभी जिन्दा हैं। उसे भीख न चाहिये।

वह खलिहानसे उठ खड़ी हुई और बेटेको पकड़कर गांवकी ओर चली गयी। घर आकर उसने अपना टीनका वह छोटा सा सन्दूक खोला जो उसे विवाहके समय नैहरमें मिला था। उसमें उसकी एक पतली-सी सोनेकी नथ रखी थी। लाख मुसीबत पड़नेपर भी उसे उसने न बेचा था और न गिरवी रखा था। उसे वह गनेशकी बहूको देना चाहती थी। इसीलिये छिपाकर रक्खे हुए थी। पर आज उससे न रहा गया। उसे वह एक बनियेके यहां एक रुपयेमें गिरवी रख आयी और चावल और गुड़ लेकर घर लौटी।

दिन डूबते डूबते मीठा भात बनकर तैयार हो गया और गनेश खाने बैठा। इधर कई दिनकी घटनाओंसे उसे यह मालूम हो गया था कि मा उसे सब खाना खिला देती है और खुद भूखी रह जाती है। इससे वह मन ही मन बहुत दुःखी हो रहा था। और इसीलिये जिस मीठे भातकी वह महीनोंसे राह देखता आ रहा था उसे सामने पाकर उसे खुशी नहीं हुई। उसने पूछा—अम्मा! इतना ही बनाया है या और है!

'बहुत काफी बनाया है बेटा! तुम खाओ! कम पड़ेगा तो और दूंगी।'

'नहीं पहले मुझे बटलोई दिखला दो।'

बटलोईमें वास्तवमें कुछ नहीं था। मा बड़े असमंजसमें पड़ीं। मगर अपना ही लड़का तो था। उसे फुसलानेमें कितनी देर लगती। मा ने बटलोईको उसकी ओर जरा टेढ़ी करके कहा—देखता नहीं! अभी तो तुझे आधा भी नहीं दिया। पर अब गनेश यों बहकावेमें आनेवाला नहीं था। उसने मांके हाथसे बटलोई छीन ली और उसमें हाथ डालकर टटोला। उसे अपना अनुमान ठीक मालूम पड़ा। उसने कहा—अम्मा अगर तुम भूखी रह सकती हो तो मैं भी भूखा रह सकता हूँ। मेरा कसूर यही है कि मैं तुमसे जल्दी-जल्दी खाना मांगता हूँ। भूखसे नहीं रहा जाता तब ऐसा करता हूँ। पर इसका यह माने नहीं है कि मैं खाऊं और तुम भूखी रहो। अबतक जो हुआ सो हुआ अब मैं अकेला नहीं खाऊंगा।

इसी समय दिन भरकी थकान और आनेवाले दिनोंकी चिन्तासे चूर गनेशके पिताने घरमें पैर रक्खा। आंगनके एक कोनेमें उन्होंने लक्ष्मीको बांध दिया और एक चारपाई बिछाकर उसपर वे गिर पड़े।

'बैल नहीं लाये।' स्त्रीने अन्दरसे पुकारा।

'नहीं। अब खेती नहीं करूंगा। उसे कोई खरीदेगा तो बेंच दूंगा। नहीं तो अब रामके भरोसे छोड़ दिया है। घरमें कुछ खिलानेको भी नहीं है। अब मैं चाहता हूँ उसे जो कुछ भी हो हमारी आंखके सामने न हो।

'और भूसा ?'

'उसे चार रुपयेमें बेच दिया है। यह लो।'

उस दुःखी किसानने चारों रुपये स्त्रीके पास फेंक दिये और आंगनमें पड़ी चारपाई पर लेटे लेटे कहना शुरू किया—अब मैं कानपुर जा रहा हूं। वहां शायद किसी मिलमें मजदूरी मिल जाय। तुम यहां किसी तरह कुटाई-पिसाई करके अपना और गनेशका पेट भरना। इस घरमें सिर्फ खेतीसे अब तीनका गुजर नहीं हो सकता।

गनेशकी मां की समझमें न आया कि उसके पति क्या कहते हैं। उसने समझा शायद उन्हें बुखार आ गया है और उसीकी बेहोशीमें वे ऐसी बहकी बहकी बातें कर रहे हैं। इसलिये और कुछ न पूछकर उसने कहा—आओ! तुम भी आज थोड़ा मीठा भात खा लो। गनेश कहता है बिना दादाको खिलाये आज न खाऊंगा।

'अच्छा गनेशमें इतनी समझ आ गई।'

'पन्द्रह बरसका हुआ। अब नहीं समझेगा तो कब समझेगा।'

पिता-पुत्र दोनोंने मिलकर थोड़ा-सा मीठा भात बटलोईमें घरकी मालकिनके लिए रखकर बाकी प्रेमसे खाया और ठण्ढा पानी पिया।

खा-पीकर वे लेटे ही थे कि दरवाजे पर किसी आदमीके आनेकी आहट मालूम पड़ी। गनेशने जाकर दरवाजा खोला। एक बुड्ढा मुसलमान खड़ा था। उसने प्रेमसे गनेशके सिरपर हाथ रक्खा और पूछा—बेटा! तुम्हारे बाप घरमें हैं ?

'हां।'

'जरा बुलाओ।'

गनेशने वहींसे आवाज लगाई—दादा!

'क्या है ?'

'मेहमान आये हैं ?'

मेहमानका नाम सुनकर पति-पत्नी दोनोंने एक दूसरेको घबड़ा कर देखा। स्त्रीने कहा—जाकर देखो न ! कौन है ?

थोड़ा-सा भात बचा है। खिला दूंगी और पानी पिला दूंगी।

किसान घरके बाहर निकल आया। स्त्री भी आकर दरवाजे पर खड़ी हो गई। बूढ़ेने मुस्कराकर कहा—'रामधन ! तुमने मुझे पहचाना शायद नहीं ! तुम्हारे बापकी और मेरी मुलाकात थी। तुम्हें मैंने अपनी गोदमें खिलाया था। तुम्हारी शादी करानेवालोंमें मैं भी एक था। पर एक जमाना बीत गया। आज मैं एक बहुत जरूरी कामसे तुम्हारे पास आया हूं। बड़ी आशासे आया हूँ। मेरी एक बात मानोगे ?'

'जरूर मानूंगा। बाबा !'

'अच्छा तो सुनो। हां ! एक चारपाई निकलवाओ। देर लगेगी।'

एक चारपाई निकाली गई। उसपर रामधन, गनेश और वह बूढ़ा तीनों जने बैठे।

बूढ़ेने कहना शुरू किया—तुम्हारे पन्द्रह सोलह सालका एक लड़का है।

'हां ! यही है।' रामधनने गनेशकी ओर इशारा किया।

बूढ़ेने गनेशको टटोला और फिर प्यार किया। और कहा—अब दिखाई नहीं पड़ता। जवान लड़का मर गया। उसकी बहू मर गयी। सिर्फ एक नातिन बची है। डेढ़ सालकी होगी। शायद उसीके लिए अबतक जिन्दा हूँ, नहीं मर जाता। अल्लाह ! उसकी खैर करे। अकेली छोड़ आया हूँ। ओफ ! क्या कह गया। यह तो अपना रोना है।

तुमसे दूसरी बात कहने आया हूं। तुमने बबेरूके बड़े मियांका नाम सुना है।

'हां। हां।'

'मैं वही हूं। तुम्हारे बाप मुझको बहुत मानते थे। उनके मरनेके बाद फिर मैं इस गांवमें आया ही नहीं। सबसे राह रस्म छूट गया। ओफ ! क्या बकता चला जा रहा हूं। हां तो सुनो ! मैं किस लिए आया हूं।"

'तुम्हारा यह लड़का कुछ पढ़ा भी है।'

'कुछ नहीं।'

'न सही। किसानीके काममें चौकस है न। देहातमें यही सबसे बड़ा पढ़ना है।'

'किसी लायक नहीं है मियां जी।'

'ऐसा न कहो। अभी लड़का है। इसकी उम्रमें हमीं लोग क्या थे। मुझे तो पैजामा भी पहिनना नहीं आता था। ऐंह ! फिर बहक गया। हां तो सुनो ! इस लड़केकी शादी हो गई।

'अभी नहीं।'

गनेशकी मां किवाड़ेके और पास आ गई। बूढ़े किसानने अपनी जेबसे एक रुपया निकालकर रामधनके हाथपर रक्खा और कहा—यह बरीछा है। अब यह लड़का मेरा हुआ। इसी महीनेके अन्दर शादी कर देनी होगी। कौन जाने हमलोग ज़िन्दा रहें या नहीं।

'पर बाबा ! इस साल तो कुछ पैदा पैदाइश भी नहीं हुई।'

'न सही। इससे शादी व्याह थोड़े ही रुकते हैं। और फिर अब

पैदा पैदाइशका नाम छोड़ो। जिन्दा रहो यही बहुत है। बड़ा खराब जमाना लगा है। अजी, सैकड़ों रुपये मैंने इसी किसानीसे पैदा किए थे पर अब तो सोना बोओ तो वह मिट्टी हो जाता है। खैर।'

'बाबा मेरे घरमें एक कौड़ी भी नहीं है। चढ़ावमें मैं गहने वगैरह कुछ न ला सकूंगा।'

'चार चूड़ियां तो लाओगे।'

अन्दरसे किवाड़ेपर खट-खटकी आवाज हुई। रामधन दौड़कर अन्दर गये। स्त्रीने कहा—पूछो लड़की किस घरकी है। लड़कीके कौन कौन हैं आदि।

बूढ़े मुसलमानने सब बातें बताईं जिसका खुलासा रामधनने स्त्रीसे जाकर इस तरह कहा—लड़कीके कोई नहीं है। उम्र करीब उतनी ही होगी जितनी गनेशकी है। सिर्फ मां है। वह भी बीमार रहती है। लड़कीके बाप बड़े मियांके पड़ोसी और बड़े दोस्त थे। इसलिए शादी का सारा खर्च वही बरदाश्त करेंगे।

कुछ सोच समझकर स्त्रीने अपनी स्वीकृति दे दी और शादी पक्की हो गई। शेष मीठा भात बड़े मियांको खिलाया गया और गनेशकी मांने सिर्फ पानी पीकर वह रात काटी।

× × × ×

दोनों ओरसे काफी प्रयत्न हुए पर उस साल शादी न हो सकी। इसका अवसर दो साल बाद आया।

बड़े मियांके परिवारमें और कोई न था। वही लड़की उनके लिए खाना पकाती थी, उनके नातिनकी देखभाल रखती थी, अपनी मांकी

दवा दारू करती थी और अपने घरका सारा काम करती थी। इसलिए जब उसकी बिदाका समय आया तब बड़े मियां विचलित हो उठे। वे अपनी दालानमें बैठे हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और सोच रहे थे कि अब आगे गृहस्थीका काम कैसे चलेगा। उनकी नातिनको कौन खिला-येगा। उसी समय नई दुलहिन उनके पास आशीर्वादके लिए लाई गई। उस समय गांव भरकी स्त्रियां वहां जमा थीं। जितने मुंह थे उतनी बातें निकल रही थीं। कोई कह रही थी—मियांजीने लड़कीका जनम बिगाड़ दिया। लड़का इतना कमजोर और रोगी है कि उसकी जिन्दगीका कुछ ठीक नहीं। कोई कह रही थी—लड़केके घरमें भूंजी भांग भी नहीं है। लड़की क्या खाकर रहेगी, अपना कलेजा? कोई कह रही थी—हाय! यह लड़की बिदा हो रही है कि विधवा। इसके तनपर एक भी जेवर नहीं। मियांजी चुपचाप बैठे यह सब सुन रहे थे। लड़कीकी रोगिणी मां कह रही थी—मियांजीने तो इतना भी किया। लड़कीको हल्दीकी रंगी धोती तो पहनवा दी। अब आगे जो उसके भागमें होगा, होगा। मैं तो संतोषसे मरूंगी।

मियांजीकी नातिन इस समय भी दुलहिनके पास थी। वह उससे बहुत हिल गई थी और उसे एक मिनटको भी जैसे छोड़नेको तैयार न थी। पहले उनके मनमें आया कि वे उसे भी रामधनके यहां भेज दें। पर वे उनके घरकी हालत जानते थे। उन्होंने किसी तरह अपनी नातिन को फुसला कर अपने पास बुलाया और नई दुलहिनसे कहा—रानी! (उसका यही नाम था) अल्लाह! तुझे खुश रक्खे। रानी उनके पैर छूकर जाने लगी।

मियांजीने सोचा इस समय इसके हाथ पर कुछ जरूर रखना चाहिये। पर पासमें जो भी नकदी थी सब खतम हो चुकी थी। एकाएक उनको खयाल आया कि उनकी पतोहू मरते समय अपनी सोनेकी जंजीर उनके हाथमें दे गई थी और कह गई थी कि जब मेरी लड़कीकी शादी हो इसे यही पहना कर बिदा करना।

मियांजी लपक कर उस कोठरीमें गये जहां वह जंजीर रक्खी थी। उसे वह उठा लाये और अपनी नातिनके गलेमें डालकर बोले—बेटी! यह तेरी है। तेरी मां इसे तेरे लिए छोड़ गई है। पर अभी तो तू छोटी है। और रानी योंही बिदा हो रही है। इसे यह जंजीर न पहनायेगी?

"जलूल पहनाऊँगी।"

मियांजीने उस छोटी लड़कीको अपनी गोदमें उठा लिया और उसने रानीको वह जंजीर पहनानेकी कोशिश की।

पर रानीने अपना सिर हटा लिया। उस बालिकाकी वस्तु वह नहीं लेना चाहती थी। वह इसी बातसे दुःखी थी कि चलते समय उसके पास बच्चीको कुछ देनेको नहीं था। उसकी चीज लेना तो उसके लिए और भी दुःखका कारण जान पड़ा। इस पर बच्ची रोने लगी और रानीको जबरदस्ती जंजीर पहनाने लगी।

बड़े मियांने कहा—बेटी पहन लो। ऐसा ही है तो जब कभी खुदा इसे बड़ी करे और इसकी शादी हो तब तुम आकर इसके गलेमें पहना जाना।

यह बात रानीकी समझमें आ गई और उसने अपना सिर झुका दिया। छोटी बच्ची उसे जंजीर पहना कर हँसने लगी।

बूढ़े मुसलमानका यह त्याग देखकर गांव वाले दंग रह गये।

उसी दिन शामको रानी अपने नये घरमें पहुँच गई—उस घरमें जहां तीन आदमी पहलेसे उपवास कर रहे थे।

क्या वह खूनी था ?

किसानकी टेंटमें जब कुछ पैसे जाते हैं तब प्रायः उसे गीत सूझता है और वह कुछ अकड़कर भी चलता है। बंसी एक अच्छा पहलवान और खासा गवैया था। इसीलिए जब वह जसरा बाजारसे एक कनस्टर घी बेचकर लौटा तब घमण्डसे उसकी छाती कुछ फूल गई थी और वह मुक्त स्वरसे कुछ अलाप भी रहा था। वह कन्धे पर लठ रक्खे, एक हाथमें खाली कनस्टर लटकाये और पीठ पर नमक, गुड़ और बच्चोंके लिए थोड़ी सी लाई-मिठाई बांधे, उच्च स्वरसे गाता हुआ घरकी ओर जा रहा था।

जसरा बाजारसे थोड़ी दूर पश्चिमकी ओर जाने पर एक नाला पड़ता है। इस नालेमें अकसर डाकू छिपे रहते हैं। इसलिए बंसी दिन

रहते ही नालेको पार कर जाना चाहता था और इसीसे उसके पैर तेजीके साथ आगे बढ़ रहे थे। यद्यपि बंसी एक अच्छा लठइत और कसरती जवान था मगर चूँकि इस समय उसके पास करीब बीस-पचीस रुपये थे इसलिए उसे चिन्ता हो रही थी।

जब वह नाला डांक गया और किसी किस्मका भय न रह गया तब वह और भी उच्च स्वरसे गाता हुआ चला। चारों तरफकी जमीन दिन भरकी तपनके बाद ठंडी हो रही थी, हवामें भी कुछ ठंढक आ रही थी और वायुमण्डलमें नीमके फूलोंकी धीमी खुशबू व्याप्त हो रही थी।

यह खुशबू बंसीको और भी मस्त बना रही थी। अब बंसी जिस रास्तेसे चल रहा था वह एक मैदानके बीचसे गया था। आस-पास कोई गांव न था। मगर मैदानमें पशुओंके फिरने और आदमियोंके आने-जाने का आभास बंसीको मिल रहा था। खेतोंके बीचमें वह रास्ता साफ-सुथरा और मैदान पर एक अच्छे कमरबन्दकी तरह पड़ा हुआ था।

गीत समाप्त कर बंसीने जब दूसरा गाना शुरू करनेके लिए गहरी सांस ली तो एकाएक उसकी नजर सजावल शिवविनायक पर पड़ी। ये महाशय छतरी लगाये एक टट्टू पर सवार थे। उनके अगल-बगल दो कारिन्दे थे। दोनोंके कन्धों पर जबरदस्त लाठियां थीं और एकके हाथमें सजावल साहबकी दोनली बन्दूक थी। सजावल शिवविनायकको देखकर एकाएक बंसीको वे सब मुसीबतें याद आईं जो उसे उनके कारण उठानी पड़ी थीं। ये वही शिवविनायक थे जिनकी कृपासे ठीक समय पर लगान न दे सकनेके कारण उसके सब खेत बेदखल हो गये थे। बंसीके अनुनय विनय करने पर भी उसको एक महीनेकी मोहलत नहीं दी गई थी।

इसीलिये अब बंसीके हृदयमें उनके प्रति आदरका कोई भाव न था और यह बात उसके गाने तथा अकड़कर चलनेसे जाहिर हो रही थी।

बंसी सोच रहा था कि जब सजावल साहबने उस पर इतनी भी कृपा न की कि उसे एक महीनेकी मोहलत देते तब वह उनकी इज्जत क्यों करे। उनकी सवारी आते देखकर वह राहसे क्यों हटकर एक किनारे खड़ा हो जाय और उनको क्यों सलाम करे?

इस तरह मनमें सोचता हुआ और कुछ गाता हुआ बंसी आगे बढ़ रहा था। रास्ता बहुत तंग था। यह संभव न था कि बगैर एकके रास्ता छोड़े, दूसरा उसपरसे निकल जाय। सजावल साहब टट्टूपर सवार थे, उनके अगल-बगल दो कारिन्दे चल रहे थे, वे बंसीके लिये रास्ता नहीं छोड़ सकते थे। यह तो बंसीका फर्ज था कि वह रास्तेसे हटकर किनारे खड़ा हो जाय और जब सजावल साहब चले जांय तब वह अपना रास्ता ले। बंसी इस प्रकार कई बार कर भी चुका था। लेकिन अब वह उनका सम्मान करनेके लिये कतई तैयार नहीं था। नतीजा यह हुआ कि बंसी और सजावल साहब एक दूसरेके बहुत करीब आकर आमने सामने खड़े हो गये।

सजावल शिवविनायकने उपेक्षाकी दृष्टिसे बंसीको देखते हुए कहा—"रस्सी जल गयी मगर ऐंठन न गयी। क्यों बे! बंसी तू इतना गुस्ताख हो गया कि मेरा रास्ता रोककर खड़ा होता है।"

बंसीने कहा—"आप तीन हैं और मैं अकेला हूँ। रास्ता आप रोके हुए हैं न कि मैं।"

एक कारिन्देने कहा—"बंसी बड़ोंसे इस तरह अकड़ोगे तो गुजर मुश्किलसे होगा।"

दूसरेने कहा—"बंसी अगर तुम अपनी खैर चाहते हो तो रास्ता छोड़कर अलग खड़े हो जाओ और चुपचाप अपने घर जाओ।"

बंसीने दोनों कारिन्दोंको सम्बोधित करते हुए कहा—"एक दिन था जब कि मैं जहां सजावल साहबका पसीना गिरता था वहां खून बहाने के लिए तैयार रहता था, इनके चरणोंकी धूर अपने सर पर चढ़ानेको तैयार रहता था। मगर इन्होंने ही सत्यानाश कर दिया। जब मैं इनके में बसा टिका था, तब इन्होंने मुझे मिट्टीमें मिलानेके लिए कोई उपाय बाकी न लगा रक्खा। अब तो मेरे ऊपर इनका कोई एहसान भी नहीं है और अब मैं इनकी इज्जत भी नहीं करना चाहता। मैं इनके लिए रास्ता छोड़ूंगा। आप दोनों भाइयोंके लिए रास्ता छोड़ सकता हूँ, इस टट्टूके लिए रास्ता छोड़ सकता हूँ बशर्ते कि ये टट्टू परसे उतर जायँ और अलग खड़े हो जायँ, मगर इनकी मैं कतई इज्जत नहीं करना चाहता।"

बंसीने अपने लट्ठको कन्धेसे जमीन तक उतर आने दिया और जेबसे सुरती और चूना निकाल कर दोनों हाथोंसे उसे रगड़ने लगा। उसके इस कृत्यको देखकर सजावल शिवविनायकके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने कारिन्देके हाथसे अपना बन्दूक ले लिया और कहा—"बदमाश! सावधान हो जा! मैं अभी तेरे ऊपर फायर करता हूँ।"

बंसीने सजावल शिवविनायककी इस बातका कोई ख्याल न किया, उसने पीट पीटकर मिंजी हुई सुरतीकी गर्द उड़ाई और दोनों कारिन्दोंका सम्मान करनेके लिए उनकी ओर हथेली बढ़ाई।

एक कारिन्देने कहा—"बंसी! रास्ता छोड़ दो! तुम्हारी इस समय सबसे बड़ी खातिरी यही है।"

दूसरेने कहा—"बंसी अनर्थ हो जायगा। पागल मत बनो।"

बंसीने अपने मुंहके अन्दर सुरती एक चुटकी डालते हुए कहा—"भाई रास्ता तो नहीं छोड़ूंगा! सजावल साहब जाना चाहें तो बगलसे जा सकते हैं।"

"मूर्ख मैं तेरी लाश परसे जाऊँगा। यह ले!" सजावल साहबने बन्दूकका घोड़ा दाब दिया।

धड़ामकी आवाज हुई। पासके आमके पेड़ों पर बैठी हुई चिड़ियां चीख उठीं और उड़ गईं। कारिन्दे "अनर्थ हुआ", कहकर चिल्ला उठे। भारी भय की आशंकासे सजावल शिवविनायक कुछ घबड़ा-से उठे और उनकी आंखोंके सामने क्षण भरको अँधेरा-सा छा गया। उन्हें ख्याल था कि बंसी इस संसारसे विदा हो गया। मगर बात झूठी थी।

बंसी खड़ा मुसकरा रहा था और गोली उसके बगलसे निकल गई थी। यह बात न थी कि शिवविनायक निशाना ठीक न लगा सके थे। वे बड़े निशानेबाज थे। दौड़ते हुए हिरनको मार गिराते थे। मगर बंसी कुछ ऐसा फुरतीला था कि जब उन्होंने अपने बन्दूकका घोड़ा दाबा तब वह उछल कर एक बगल खड़ा हो गया और बन्दूक छूटते ही उछल कर फिर अपनी जगह पर आ गया।

बंसी बाल-बाल बच गया था, इससे सजावल शिवविनायक झेंपे तो बहुत थे मगर अन्दरसे वे खुश भी थे। एक अनर्थ हो जानेसे बच गया था और अब उनको इतना गुस्सा न था जितना कि पहले था।

बंसीने कहा—"सजावल साहब दूसरी गोली भी आजमा लीजिये।"

सजावल साहबने कहा—"नहीं, अब तू अपनी लाठीकी आजमाइश कर।"

बंसीने कहा—"अच्छा सम्हल जाइए।"

दोनों कारिन्दे चिल्ला उठे—"खबरदार! बंसी! खबरदार!!"

सजावल साहबने फिर अपना बन्दूक उठाया और निशाना ठीक करने लगे। बंसी थोड़ा पीछे हटा और दौड़कर एक ही छलांगमें टट्टू पर बैठे हुए सजावलके सिरपरसे उछला और उनके पीछे जाकर खड़ा हो गया।

बंसीने कहा—"सजावल साहब जाइए! मैंने आपकी बहादुरी देख ली।" और वह गाता हुआ अपने घरकी ओर चला गया।

(२)

इस घटनाके १० दिन बाद जब बंसी अपने घरमें बैठा हुआ खाना खा रहा था, उसके दोनों बच्चे मोहन, राधा आंगनमें खेल रहे थे, और उसकी स्त्री रमकलिया जिसे रामकली कहना अधिक अच्छा होगा, उसके पास बैठी पंखा झल रही थी, बाराके थानेदारने ४-५ पुलिसके सिपाहियों और १०-१२ चौकीदारोंके साथ उसका घर घेर लिया। आसपासके घरोंकी औरतोंने बंसीके घरमें जाकर उसे यह संवाद सुनाया।

इस बीचमें बंसीने कोई कसूर न किया था। इसीलिये एकाएक पुलिसके आनेसे वह कुछ चौंका और घरसे बाहर जाने लगा। रामकलीने कहा कि अब तो जो होना होगा होगा ही तुम खाओ और मैं बाहर जाकर देखती हूँ कि क्या बात है।

रामकली बाहर आई। दारोगाजीके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी और बोली—"हजूर क्या अपराध हुआ।"

दारोगा साहबने उसके ऊपर गालियोंकी बौछार करते हुए कहा—"डाकूकी औरत! यह पूछने आयी है कि क्या कसूर हो गया है! उसी-की कमाई खाती है और जानती नहीं।"

अपने मनके भावको दबाते हुए रामकलीने कहा—"हजूर मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम है।"

"अच्छा उसे हाजिर कर सब मालूम हो जायगा।'

रामकली चुपचाप वापिस लौट आई और घरमें आकर अपनी एक पड़ोसिनसे बोली कि वे बाहर जाकर गांवके चौकीदारसे दरियाफ्त करें कि क्या मामला है। बंसीको जब मालूम हुआ कि दारोगा साहब ने उसकी पत्नीका अनादर किया है, तब वह क्रोधसे लाल हो गया और अपना लट्ठ लेकर निकलने लगा।

रामकलीने उसके हाथसे लट्ठ छीन लिया और कहा—"सब्रसे काम लो, अगर अभीतक कुछ नहीं बिगड़ा है, तो आगे और मत बिगाड़ो।"

बंसीने लट्ठको एक कोनेमें रखते हुए कहा—"अच्छा, ले! यह लट्ठ और इन दोनों बच्चोंको, अब मैं तुझे सौंपता हूँ और जाता हूँ। मेरा सर घूम रहा है और मुझे जान पड़ता है कि जैसे अब कभी घर लौटकर न आऊँगा। मेरी लाठी देखकर तू मेरी याद करना और चाहे जैसे हो, इन बच्चोंको पाल-पोस कर बड़ा करना और जब मेरा बच्चा बड़ा हो जाय तब उसे यह मेरी लाठी देना और कहना कि यह तेरे बापकी

लाठी है। उनके पास तुझे देनेके लिये और कुछ न था। यही सबसे प्यारी चीज थी। यह वे तुझे दे गये हैं।"

बंसीने अपने बच्चोंको चूमा और अपनी पत्नीसे बिदा लेकर वह घरसे बाहर हो गया।

घरसे बाहर निकलते ही पुलिसके सिपाहियोंने उसके हाथोंमें हथकड़ी डाल दी और उसे बांध करके थानेकी ओर ले गये। उसके जानेके बाद मालूम हुआ कि दस दिन पहले बंसीने जसरा बाजारके पश्चिमवाले नालेमें बाजारसे सौदा बेंचकर लौटनेवाले एक बनियेको जानसे मारकर उसका रुपया-पैसा छीन लिया था। बंसीको यह करते हुए अमिलियाके सजावल शिवविनायक और उनके कारिन्दोंने देखा था। सजावल साहब ने बंसीके ऊपर गोली भी चलाई थी, मगर वह दूर निकल गया था इससे निशाना खाली गया।

(३)

रामकलीने घरमें जो कुछ भी था, यहांतक कि अपने गहने भी बेंचकर बंसीकी पैरवी की, मगर शिवविनायकके सामने उसकी एक न चली। साल भरकी मुकदमेबाजीके बाद बंसीको आजन्म कैदकी सजा सुनाई गई। अदालतसे अन्तिम बार बंसीको जब पुलिसके सिपाही पकड़ कर जेलखाने ले जाने लगे, तब रामकली उसके पैरोंसे लिपट गई और रोने लगी।

बंसीने रामकलीसे कहा—"तुझे यह जानकर सन्तोष करना चाहिये कि मैं बेकसूर हूँ। और मैंने किसीकी जान नहीं ली है। मैंने किसीका माल नहीं लूटा है। अगर मैंने कोई कसूर किया है तो सिर्फ इतना

किया है कि मैंने सजावल शिवनायकके सामने सर नहीं झुकाया और न कभी झुकाऊँगा। तू मुझे भूल जाना और उन दोनों बच्चोंको पाल-पोस कर बड़ा बनाना। मुझे विश्वास है कि मेरा बच्चा जब बड़ा होगा, तो अवश्य इसका बदला लेगा और मैं क्या कहूँ।"

सिपाहियोंने बड़ी बेरहमीसे पति-पत्नीको एक दूसरेसे अलग किया। रामकली अदालतके बाहर कंकरीली सड़कपर चीख मारकर गिर पड़ी और बंसीको पुलिसके सिपाहियोंने जेलकी लारीमें ढकेल दिया। ड्राइवरने हार्न बजाई और लारी देखते-ही-देखते वहांसे गायब हो गई। रामकलीके कानोंमें सिर्फ लारीकी गरगराहट गूंजती रही।

(४)

ऊपरकी घटनाको आज पन्द्रह वर्ष हो गये। फिर वही बैसाखकी सन्ध्या है और उसी प्रकार वायुमण्डलमें नीमके फूलोंकी भीनी-भीनी खुशबू व्याप्त हो रही है।

मोहन अब बाइस वर्षका खासा जवान है और उसकी बहन राधा भी बीस वर्षकी युवती है। रामकली और उसके ये दोनों बच्चे बंसीके जेल जानेके बाद एक गाय लिये मझियारीके नीचे यमुनाके कछारमें खेतोंकी मेड़ोंपर चराया करते। गाय जो दूध देती, उसका मक्खन और मट्ठा बनता। आस-पासके गांवोंमें मजदूरोंके घरोंमें रामकली मट्ठा बेंचती और जब घी खरीदनेवाले गांवमें आते, तो उनके हाथ घी बेंचती। इस तरह उनका गुजर होता रहा। ज्यों-ज्यों बच्चे बढ़ते गये, माको इस काममें मदद मिलती गई। अहीरकी पत्नीने इस प्रकार पतिकी गैरहाजिरीमें

अपने बच्चोंको पाल-पोस कर उनको स्वस्थ बनाया। अब उनके हाथमें कुछ नकद रुपया भी आ गया था और उनके पास एक भैंस और चार गायें हो गई थीं और वे थोड़ी-सी शिकमी काश्त भी करने लगे थे।

बैसाखकी, ऐसी ही पन्द्रह वर्ष पूर्वकी एक पूर्णमासीके दिन जिस तरह बंसी घर आया था, उसी तरह मोहन भी कन्धेपर लट्ठ रक्खे हुए घर आया। मोहनको देखकर रामकलीको अपने यौवनके आरम्भके दिन याद आ गये। वह कुछ चौंकी-सी। उसे जान पड़ा जैसे बंसी ही घरमें प्रवेश कर रहा है बाप और बेटे दोनोंकी आकृतियोंमें अद्भुत साम्य था।

मोहनके इस बार घर आनेमें फर्क सिर्फ इतना था कि वह खूनसे लथपथ था और उसे काफी चोट लगी हुई थी। भावी आशंकाको देख कर रामकलीका हृदय दहल गया। उसने पूछा—"यह क्या कर आये।"

मोहन थकानसे पीड़ित हो रहा था और चोटोंसे शिथिल पड़ता जा रहा था। पास पड़ी हुई चारपाईपर वह धमसे गिर पड़ा और बोला—"मा! अमिलियाके सजावल और उनके सिपाहियोंने नागनपुरके बागमें एकाएक मुझपर हमला किया। न कोई वजह, न कोई कसूर! सिर्फ यह कहा कि यह अकड़ कर और गाता हुआ चलता है और सजावल साहबको सलाम नहीं करता।"

मैंने कहा—"जिसको मेरे बापने सलाम नहीं किया, उसको मैं भी सलाम नहीं करूंगा। बस इसी कसूरपर वे मुझपर टूट पड़े। मैंने भी अपनी जान बचानेके लिये लट्ठ चलाया।"

बात करते-करते मोहनको एकाएक कुछ जोश आ गया, वह उठ कर बैठ गया और उस लाठीको उसने प्रेमसे चूमा।

उसने कहा—"मा! आखिर तो यह मेरे पिताकी लाठी थी। इसने मेरी रक्षा की। जीवनसे सब तरह निराश होकर मैंने भी लाठी चलाई और उनमेंसे कइयोंको मार गिराया। पितापर तो झूठा मुकदमा चलाया गया था, लेकिन मेरे ऊपर सच्चा मुकदमा चलेगा।

मेरा खयाल है कि मैं कइयोंको सुरधाम पहुँचा आया हूँ। थोड़ा पानी पीनेको लाना, बहुत प्यास लगी हुई है।",

राधा दौड़कर भाईके लिये पानी ले आई।

रामकलीने चारपाई बिछाकर उसे अच्छी तरह लिटा दिया और चारपाईके पास बैठकर वह अपने देवताओंकी मनौती करने लगी।

मा और बेटी दोनोंके चेहरोंपर हवाइयां उड़ रही थीं। इस विपत्तिमें एकमात्र मोहन उनका सहारा था और आज जान पड़ता था, जैसे वह भी उनके हाथसे निकल जायगा।

रामकलीने एक दुखको निःश्वास लिया और कहा—"हाय! अमिलियाके सजावलको मेरा खेत लेकर ही सन्तोष नहीं हुआ, पतिको मुझसे अलग करके भी सन्तोष नहीं हुआ और अब उसने मेरे बेटेपर भी दांत लगाया है।"

मोहन दर्दसे चुपचाप बिस्तरपर पड़ा रहा। मा बेटीकी यह भी हिम्मत न हुई कि पड़ोसियोंसे कुछ जिक्र करें और उसकी दवा-दारू करें। वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो मिट्टीका एक दीपक जलाये घरमें ही बैठी रहीं।

गांवमें जब सन्नाटा छा गया और करीब बारह बजे रातका वक्त हुआ, तब मा और बेटी दोनोंको जान पड़ा जैसे उनके छप्परपर कोई

चढ़ रहा है। दोनों आंगनमें निकल आईं। उनके आंगनमें आते ही रामकलीके कानोंमें एक परिचित स्वर गूंज उठा—"चिल्लाना मत! शोर मत करना! मैं बंसी हूँ।"

"अरे! मोहनके बाप! तुम हो! मैं सपना तो नहीं देख रही हूँ।"

"नहीं-नहीं सच है।"

बंसी आंगनमें कूद पड़ा और एक सांसमें कह गया—"जेलखानेसे हिकमतसे निकल कर अभी-अभी सीधा यहां चला आ रहा हूँ। सिर्फ यह जाननेके लिये कि तुम लोग कैसे हो। इस तरह जेलसे निकल भागनेकी कोशिश मैंने दो बार की लेकिन हर बार रास्तेहीमें पकड़ा गया और यहांतक नहीं पहुँच सका। पुलिसके कुत्ते मेरे मांसकी गन्ध फौरन पा जाते हैं, वे मेरे पीछे ही दौड़ते हुए आते होंगे। इसलिये अब तुम अपने सुख-दुखका हाल मुझसे कहो और अगर तुम्हारे पास कुछ खाना हो तो मुझको खिलाओ।

बंसीने पास ही खड़ी राधाकी ओर दृष्टि डाली। उसका चेहरा बिलकुल उस तरह था जैसा उसकी स्त्रीका उस समय था जब वह उसके घर आयी थी।

बंसीने कहा—"यह राधा है! क्यों रे! बापसे इतना शर्माती है! मेरा अन्दाज ठीक निकला! मैं समझता था कि तू इतनी बड़ी हो गयी होगी। देख, जसरा बाजारसे मैं तेरे वास्ते यह साड़ी लाया हूँ।"

बंसीने अपनी पोटली खोली और उसमेंसे निकाल कर राधाको एक साड़ी दी। इसके बाद उसने पूछा—"मोहन कहां है। मैं अन्दाजसे उसके नापका भी एक कुरता लाया हूँ।"

रामकलीने सारी घटना बंसीको बता दी और उसे उस कोठरीमें ले गई जिसमें मोहन चुपचाप खाटपर लेटा हुआ था। बंसीने झुककर अपने बेटेके मस्तकको चूमा और उसके बगलसे अपनी लाठीको लेकर उसने उसको भी चूमा और जो नई कमीज लाया था उसे उसको पहना दिया। जेबसे उसने कुछ मलहम निकाला और उसकी चोटपर लगा दिया। फिर उसने एक गिलासमें अपने थैलेसे निकालकर कोई चीज मोहनको पिला दी। इससे उसके शरीरमें फिरसे चेतनता आ गई।

बंसीने मोहनके खूनसे सने हुए कपड़ोंको खुद पहन लिया और साफ-सुथरे कपड़े मोहनको पहना दिये।

उसने मोहनसे कहा—"बेटा अब तुम रातोरात जसरा बाजार चले जाओ! जो दवा मैंने तुम्हें पिलाई है उसमें इतनी ताकत है कि तुम जसरा बाजार तक चले जाओगे। वहां तुम सेठ चरनदासके यहां चले जाना और मेरा नाम बताना कि बंसीने भेजा है। वे तुम्हें अपने घरमें छिपा लेंगे और तबतक छिपाये रहेंगे जबतक यह मामला खत्म न हो जायगा।

लड़केने कहा कि नहीं ऐसा नहीं होगा।

बंसीने उसे डांटकर कहा—"होगा क्यों नहीं, पागल हुआ है। बाप बेटे दोनों गिरफ्तार हों! इससे तो बेहतर है कि सिर्फ बाप गिरफ्तार हो जिसे कि हर हालतमें गिरफ्तार होना है ही। मैं अपने बयानमें कहूँगा कि मैंने मारा है, मेरी उनकी पुरानी दुश्मनी है, तुम फौरन घरके बाहर निकल जाओ, तुमको एक परिवार भी तो पालना है। मैंने जिन्दगीमें बहुत उथल-पुथल देख लिया है। तुम्हें तो बहुत कुछ देखना है।"

(५)

बंसीने बेटेको ढकेलकर घरके बाहर कर दिया और अन्दरसे दरवाजा बन्द कर लिया। रामकलीने चूल्हा सुलगाया। भैंसका कच्चा दूध रक्खा था। थोड़ा-सा चावल डालकर उसे चूल्हेपर चढ़ा दिया और थोड़ी देर बाद बंसीको खानेके लिये बुलाया।

बंसी खाना खाता जाता और अपने जेलके अनुभव बताता जाता लेकिन रामकलीका चित्त दूसरी जगह था। वह अपने लड़केको गँवा चुकी थी और सबेरा होते ही पतिके चले जानेकी आशंका थी।

खाना खा चुकनेके बाद बंसीने कहा—"प्यारी! मैं तुझसे खुश हूँ कि तू सचमुच एक किसानकी स्त्री और एक नौजवान किसानकी मा होने लायक है। हम किसानोंका स्वास्थ्य ही हमारा धन है। अगर हम तन्दुरुस्त हैं तो बहुत कुछ कमा सकते हैं और अगर तन्दुरुस्त नहीं हैं तो कुछ नहीं कर सकते। किसानको चाहिये कि जो कुछ भी धन वह पैदा कर सकता है वह अपने तथा अपने बच्चोंका शरीर बनानेमें लगावे। तुमने यह काम किया है, यह मैं अपने बच्चोंको देखकर कह सकता हूँ। तुम अब परिवारको तथा गृहस्थीको अच्छी तरह चला सकती हो। इसका मुझको विश्वास हो गया है।

यह कहते कहते बंसीने अपनी हलकमें हाथ डाला और जान पड़ा कि वह कै करना चाहता है। रामकली कुछ चौंकी लेकिन थोड़ी देर बाद उसने देखा कि उसके पति गिन्नियां उगल रहे हैं। १; २; ३; ४; पूरी पचीस गिन्नियां बंसीने अपनी हलकसे निकालीं और पानीसे धोकर उन्हें रामकलीको दिया और पूछा कि राधाका ब्याह हुआ या नहीं?

"नहीं।"

"मेरा ख्याल है कि इतने रुपये मेरे जैसे किसानकी लड़कीके ब्याह के लिये काफी हैं।"

रामकलीने कहा, इस कामके लिये आपको इतना परेशान होनेकी जरूरत न थी। मैंने भी कुछ रुपया जमा किया है।

यह कहकर रामकली बंसीको एक कोठरीमें ले गई और साबरसे उसने एक गाढ़ खोदा और रुपयोंसे भरी हुई एक मेटिया निकाली।

पत्नीका यह कार्य देखकर बंसी और भी खुश हुआ।

उसने कहा—"अच्छा मेरी गिन्नियोंको भी इसीमें गाड़ दो और देखो इस बार मुकदमेमें एक पैसा भी खर्च न करना। मैं जेलके जीवनसे खूब अभ्यस्त हो गया हूँ। सिर्फ एकही इच्छा बाकी रह गई है। अगर मैं जेलखाने न जाता तो अपने लड़केको थोड़ा पढ़ा देता। लेकिन आदमीका सारा सोचा हुआ कार्य पूरा नहीं होता और कोई न कोई दुख उसे बना ही रहता है।"

पति-पत्नीमें इसी तरहकी बातें होते होते सबेरा हो गया और बंसी पन्द्रह वर्षके बाद जब अपने घरसे फिरसे बाहर निकला तब उसने अपने घरको पुलिसके सिपाहियोंसे घिरा हुआ पाया। वे सब लोग मोहनको गिरफ्तार करनेके लिए आये थे। लेकिन खूनसे रंगे हुए कपड़ोंमें बंसीको देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। एक गवाहने कहा—"मुझे उसी समय जान पड़ता था कि यह बंसी है। सिवा बंसीके ऐसी बहादुरी लाठी चलानेमें और कौन दिखा सकता था।"

इस बार बंसी अपनी लाठीके साथ गिरफ्तार हुआ। पुलिसवाले

उसे फिर उसी तरह बांधकर बारा थानेकी ओर ले गये। इस बार उसे बिदा करनेके लिये दरवाजेपर एकके बजाय दो स्त्रियां आंखोंमें जल भरे हुए खड़ी थीं। सारे गांवमें हल्ला मच गया कि बंसी आया है। आस-पासके सब घरोंके लोग उसे देखने निकले और उसकी बहादुरीकी प्रशंसा करते हुए बहुत दूर तक उसे पहुँचा आये।

स्त्रीका इच्छुक

(१)

बाबू कालीचरण स्त्री-प्रेमके बड़े भूखे थे । उन्हें सब सुख प्राप्त था । मां-बाप थे, भाई-बहन थे, जमीन्दारी थी । पर उनके स्त्री न थी । दिल्ली शहरमें हजारों स्त्रियां थीं; जिधर वे जाते थे, उधर ही पचासों दिखाई पड़ती थीं । उनके पास-पड़ोसमें सैकड़ों थीं, पर कोई ऐसी न थी जिसे वे अपनी कह सकें, जिसे दफ्तरसे छुट्टी पानेपर लौटते समय चांदनी चौकसे बढ़िया साड़ी या कोई कीमती गहना ला सकें और जिससे अपने दिलका सुख-दुख कह सकें । उनके भाई-बहनोंका ब्याह हुआ, पर मा-बापके हजार कोशिश करनेपर भी कालीचरणका ब्याह न हो सका । धीरे-धीरे उनकी उम्र चालीस वर्षकी हो गयी । अब वे ब्याह-

से निराश हो चले । उनकी चिन्ताकी चिता जलकर बुझ गयी । निराशाकी राखने इच्छाकी प्रत्येक चिनगारीको बुझा दिया । उन्होंने समझा शायद उनके भाग्यमें स्त्री-सुख नहीं लिखा है । कदाचित ब्रह्मा उन्हें बनानेके बाद उनका जोड़ा बनाना भूल गये ।

कालीचरणके दोस्तोंने उनका कितना मजाक उड़ाया, यहां यह बतानेकी जरूरत नहीं । एक नहीं, पचासों बार वे बेवकूफ बने, पर अब भी यदि कोई कह देता है—"कालीबाबू, मेरी निगाहमें एक स्त्री है, जो आपसे ब्याह कर सकती है"—तो उनकी आंखोंमें आशाकी ज्योति आ जाती है और वे उसकी बातें ध्यानसे सुननेको तैयार हो जाते हैं । हां, इतना सुधार अवश्य हो गया है कि अब वे जल्दी-जल्दी मौर नहीं बांधते और न दोस्तोंको दावतें देते हैं । अब उनका यह विश्वास हो चला है कि जमाना झूठा है । अखबारोंमें विवाहके जो विज्ञापन निकलते हैं, वे सब ठगनेके लिये होते हैं; क्योंकि कई बार ठगे जा चुके हैं । किसीका ब्याह नहीं होता । सबका मजाक उड़ता है, पर मारे लज्जाके कोई अपने मजाककी बात दूसरोंसे नहीं कहता, आह, ईश्वर ! तेरे इतने बड़े स्त्री-संसारमें काली बाबूके लिये काली-कलूटी, लूली-लंगड़ी, सुडौल-बेडौल एक भी स्त्री नहीं !

स्त्रीके फिराकमें काली बाबूने काशी, प्रयाग, मथुरा, हरद्वार आदि तीर्थ किये, पर कहीं कुछ दांव न चला । उन्होंने ऐसे मा-बापोंकी तलाश की, जो रुपया लेकर अपनी लड़कियां दूसरोंके साथ ब्याह देते हैं, पर उन्हें कोई मातवर असामी न मिला । जो मिले वे पूरे ठग मिले । एक बार नवबधू जिस दिन घरमें आयी, उसी दिन शामको रुपया-पैसा लेकर

चम्पत हो गयी और एकबार विवाहकी सब कृतियां समाप्त हो जानेपर जब दोस्तोंके कहनेसे उन्होंने दुल्हनका घूंघट उठाया, तब देखा कि वह मोमकी एक भद्दी-सी विशालकाय गुड़िया है। इस बार उन्हें इतनी मानसिक ग्लानि और इतना कष्ट हुआ कि वे सीधे यमुनाकी ओर भागे और जान पड़ता था उसमें डूबकर जान दे देंगे, पर कुछ सोच-समझकर लौट आये।

अब काली बाबू अपनी स्मृतिके पटपर इन चित्रोंको अंकित करने लगे। कभी वे आप ही आप हँसते, कभी खीझते, कभी उदास होते और कभी आंसू बहाते। मुहल्लेके छोटे-बड़े सभी लड़केतक उनकी इस कमजोरीको जान गये थे और अक्सर उन्हें तंग किया करते थे। अब काली बाबूका कहीं किसी काममें जी न लगता। जबतक मनुष्यकी आंखों-में आशाकी ज्योति रहती है, तभीतक वह सब दिशाओंमें प्रयत्न करता है। आशाके न रह जानेपर वह शिथिल हो जाता है और मृतवत्‌सा जान पड़ने लगता है। काली बाबूकी भी करीब-करीब यही दशा थी। उनका किसी काममें जी न लगता था। दफ्तरमें अक्सर उनके स्थानपर बीमारीकी अर्जी पहुँचती थी। घरमें भी वे किसीसे कुछ न बोलते थे; चुपचाप पड़े रहते थे।

उनकी इस लीलासे उनके मा-बाप और भाई-बहन भी परेशान हो उठे? वे सब यह समझने लगे कि काली बाबू घरवालोंपर नाराज हैं। शायद इसलिये नाराज हैं कि सबका ब्याह हो गया, पर उनका क्यों नहीं हुआ? वे सब आपसमें प्रायः काली बाबूके ब्याहकी चर्चा करते। क्या किया जाय, कैसे ब्याह कराया जाय, यही सोचते। काली बाबू दूसरे

कमरेमें पड़े-पड़े इन बातोंको बड़े आनन्दसे सुनते और अपने विवाहके बाद अपने बढ़े हुए परिवारकी कल्पना करते। एक दिन उनके कानमें पड़ा—"बस यही ठीक है, लड़की यहांतक किसी तरह आ जाय और जबरदस्ती ब्याह कर लिया जायगा। उसके कोई है भी नहीं। रांड़ बुढ़िया मा है! रो-गाकर चुप हो जायगी।"

दूसरे कमरेमें काली बाबूने करवट बदली। निराशाकी राखको सम्भावनाकी अदृश्य अंगुलियोंने जरा हटा दिया। आशाकी हवासे इच्छा-की चिनगारियोंमें चमक आ गयी। काली बाबू उठकर बैठ गये। उन्हें मालूम हुआ कि वे खासे फुर्तीले जवान हैं। अपने आपसे वे कहने लगे—"स्त्रीसे ही पुरुषको जीवन मिलता है। बिना स्त्रीका पुरुष कीचड़की तरह पड़ा रहता है। स्त्रियां न हों, तो यह संसार मुर्दा दिखाई पड़े।" वे उठकर खड़े हो गये और लपककर उस कमरेमें जा पहुँचे, जिसमें उनके मा-बाप भाई-बहन बातें कर रहे थे। काली बाबूने कुछ उत्तेजित होते हुए पूछा—"क्या कहा मा?"

(२)

पूर्व निश्चयके अनुसार काली बाबू उनके माता-पिता और भाई-बहन सब नगला पहुँचे। नगला दिल्लीसे २० मील पश्चिम एक गांव है। पन्द्रह-बीस घरोंकी बस्ती है। इसी गांवमें कालीचरणकी जमींदारी है। इसी गांवमें वे पलकर बड़े हुए हैं। गांवका बच्चा-बच्चा उन्हें पहचानता है। जिस दिन ये लोग नगला पहुँचे, उसी दिन उस गांवके सब लोग स्त्री-पुरुष लड़कियां-लड़के इन्हें देखने आये। सबोंने बड़ी प्रस-न्नता प्रकट की। काली बाबू की मानें एक-एक स्त्रीसे बातें कीं और

सबको कुछ-न-कुछ उपहार दिया। जब सब जाने लगीं, तब काली बाबू की माँने एक बुढ़ियाको संबोधन करके कहा—"लक्खीकी मा! तुम जरा ठहरो, तुमसे एक जरूरी बात कहनी है।"

"कल फिर आऊंगी मालकिन। लड़कीको अकेली छोड़ आयी हूँ। बेचारी डरती होगी।"

"कालीको भेजकर मैं उसे बुलवाती हूँ। बहुत दिनोंसे देखा नहीं। उसे भी देख लूंगी।"

बुढ़िया बैठ गयी। काली बाबू लक्खीको ले आनेके लिये रवाना हो गये। उनके पांव बड़ी फुर्तीसे उठने लगे। हाथ झटकते हुए और गुन-गुन करते वे आगे बढ़े जा रहे थे। एकाएक पीछेसे उन्हें किसीने आवाज दी। काली बाबू खड़े हो गये—"बोलो क्या कहते हो! मैं जरा जल्दीमें हूँ।"

"मैं भी चलूँ?"

काली बाबूने उस आदमीको गौरसे देखा। उनका बचपनका दोस्त मेवालाल था। उन्होंने पूछा—"तुम जानते हो, मैं कहां जा रहा हूँ।"

"सब जानता हूँ! मैंने ही ये सारी बातें सोची हैं।"

अब दोनों साथ-साथ बढ़ने लगे। मेवालालने कहा—"मैं तो भाई, अब ब्याहका नाम न लूंगा। पटनामें मेरा भाई रहता है। वहांसे वह तीन स्त्रियां मेरे लिये ला चुका। पर तीनों मुझे छोड़-छोड़कर दूसरोंके यहां चली गयीं। स्त्रीकी जात बड़ी बुरी होती है। आदमी मर जाय, ब्याह न करे।" काली बाबूने कुछ उत्तर न दिया। एकाएक

मेवालालने कहा—यही घर है। फिर वह चिल्लाने लगा—"लक्खी! अरी लक्खी!

हाथमें मिट्टीके तेलका धुंधला दीपक लिये एक युवती कन्या बाहर निकली। दीपकके क्षीण प्रकाशमें काली बाबूने उसे देखा। उन्हें वह लक्ष्मी, रमा, सीता, सरस्वती, सबसे सुन्दर दिखायी पड़ी। वे मन-ही-मन कहने लगे—ओह! ऐसी स्त्री मिले, तो कब्रमें सोता हुआ पचासों वर्षका मुर्दा भी उठकर खड़ा हो जाय।

मेवालालने जल्दी-जल्दी कहा—लक्खी, तेरी माको हैजा हो गया! कालीबाबूके यहां पड़ी छटपटा रही है। तुझे देखनेको बुलाया है, चल, जल्दी चल।" लक्खीके हाथसे चिराग गिर गया। वह पागल-सी हो उठी। और चिल्ला उठी—हाय मेरी मा! हाय मैया! हाय! ऊउहूँ! लक्खीका इस प्रकारका रोना काली बाबूको बहुत पसन्द आया। उन्होंने मन-ही-मन कहा—आज चाहे जितना रो लो! कलसे तुम्हें रोने नहीं दूंगा।

रोती चिल्लाती लक्खी काली बाबूके साथ उनके मकानपर आयी। पर वहां पहुँचनेपर उसने अजीब ही दृश्य देखा। उसकी बुढ़िया माके हाथ-पांव बंधे थे। दो आदमी उसके ऊपर चढ़े थे और एक आदमी उसका मुंह पकड़े था। यह दृश्य देखकर लक्खी चौंकी और उसके जीमें आया, वापस भाग जाय, पर माकी दुर्गति उससे देखी न गयी। उसने भय-कंपित स्वरसे कहा—"माको क्यों मार रहे हो? उसके पास क्या है? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

लक्खीकी बातका किसीने कुछ जवाब न दिया। पर उसकी बुढ़िया

माने अपनी पूरी ताकत लगाकर अपने हाथ-पांव और सिरके झटकासे लक्खीकी ओर आंखोंसे विचित्र प्रकारका इशारा किया। लक्खी सब समझ गयी। पहले हीसे उसे सन्देह हो रहा था। वह वापस जाने लगी। पर उसे भी लोगोंने पकड़ लिया। बड़ी देरतक लक्खीमें और कालीबाबूके आदमियोंमें गुत्थमगुत्था होती रही। अन्तमें लक्खी थककर लस्त हो गयी और गिर गयी। जालमें फंसी हिरणीकी भांति आंसू, भय और क्रोध भरे नेत्रोंसे वह इधर-उधर देखने लगी। कालीचरणकी मांने उसके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—बेटी घबड़ा मत! आजसे तू मेरी पुत्रवधू बनेगी। तेरा कालीचरणके साथ ब्याह होगा। वह तुझे बड़े सुखसे रक्खेगा। तुझे खूब गहने-कपड़े देगा। तेरी माको भी बड़ा आराम देगा। तू कालीके साथ व्याह करनेको राजी हो जा।" लक्खी-का मुंह भी लोग दबाये हुए थे। खोलते थे तो वह चिल्लाती और गाली बकती थी। इसलिये वह कुछ उत्तर न दे सकी। पर क्रोधपूर्ण आंखोंसे उसने कालीचरणकी माकी ओर तिरस्कारके साथ देखा।

धीरे-धीरे ब्याहकी सब तैयारियां हो गयीं। पंडित बुलाये गये और लोगोंने कालीचरणको लक्खीके पास बैठाकर उसकी बुढ़िया मा के हाथ-में कुशा पकड़ाकर कन्यादान करा दिया।

उसी रात बैलगाड़ी पर लक्खीके साथ कालीचरण दिल्लीके लिए रवाना हो गये। रास्ते-भर वे लक्खीको समझाते आये।

करीब आठ बजे दिनको वे दिल्ली पहुँचे। दूसरे दिन उनके मा-बाप भी आ गये। काली बाबू की खुशीका ठिकाना नहीं था। उन्होंने अपने तमाम दोस्तोंको दावत दी थी। घरमें बड़ी भीड़ थी और खासी चहल-

पहल थी। दोस्त लोग कालीबाबूसे कहते थे—वाह! आखिर तुमने व्याह कर ही लिया। खूब, भाई खूब!

अब सब लोग खाने बैठ गये थे। तरह-तरहके पकवान बने थे। लोग बातें करते जाते थे और खाते जाते थे। काली बाबू सबको घूम-घूम करके खिला रहे थे।

एकाएक कालीचरणकी बहन चिल्ला उठी—"पकड़ो! पकड़ो! बहू भगी जा रही है।"

लोगोंने आश्चर्यसे देखा कि सचमुच नव-बधू भीतरके कमरेसे निकलकर आंगनमें खड़ी है और बाहर जानेका रास्ता देख रही है।

कालीचरणने लपककर उसे पकड़ा। लक्खी हाथ छुड़ा लिया, तब दो आदमियोंने और दौड़कर उसे पकड़ा। और कोई उपाय न देख-कर लक्खीने अपनी साड़ी उतारकर दूर फेंक दी और कहा—'छोड़ो। मुझे जाने दो! मैं लड़की नहीं, लड़का हूँ! मा ने मुझे लड़की बनाकर रक्खा था ताकि जमींदार मजदूरी न कराये और सिपाही बेगारके लिए न पकड़े।"

मकानके भीतरसे आवाज आयी—ऐं! यह क्या?

काली बाबू अवाक् रह गये। खानेवाले हँसने लगे।

पिता-पुत्र

(१)

पण्डित कृपाशङ्कर शर्मा तर्क-शास्त्रमें अद्वितीय थे। वाद-विवाद में उनसे कोई पार नहीं पा सकता था। चारों तरफ उनकी विद्वत्ताकी प्रशंसा हो रही थी। जहां वे जाते थे वहीं उनका धूम-धामसे स्वागत होता था और हजारों आदमी उनका व्याख्यान सुनने आते थे। फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं था। बात यह थी कि उनके घरमें ही उनका एक प्रबल विरोधी उत्पन्न हो गया था। उनका ज्येष्ठ पुत्र राधाचरण सोलह वर्षसे ऊपर का हो चुका था और मौके-बेमौके ऐसे-ऐसे प्रश्न कर बैठता था जिनका उत्तर देना कृपाशङ्करके लिए कठिन हो जाता था।

(२)

पण्डित कृपाशङ्कर शर्मामें सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि वे जैसा कहते थे वैसा करते नहीं थे। राधाचरण उनकी इसी दुर्बलताको पकड़ता था और उन्हें निरुत्तर कर देता था। पहले तो कृपाशंकरने अपने बेटेको धमकाया और मारा-पीटा भी। परन्तु जब इससे कुछ लाभ न हुआ तब उससे बोलना बन्द कर दिया। इस दशामें भी पिता-पुत्रसे कभी-कभी दो-दो चोंचें हो जाया करती थीं।

एक दिन कृपाशङ्कर अपने मकानकी छतपर बैठे छोटे पुत्रके विवाह के सम्बन्धमें बातें कर रहे थे। राधाचरणने आकर कहा—"पिता जी, यदि बुरा न मानें तो कुछ मैं भी निवेदन कर दूं।"

"नहीं, मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनना चाहता," कहकर कृपाशङ्कर जरा गम्भीर हो गये।

"परन्तु मां तो अवश्य सुनना चाहेंगी, क्यों मां," यह कहता हुआ राधाचरण अपनी मां के पास जाकर खड़ा हो गया।

माताने बेटेको प्यारसे बैठाकर कहा—"कह, क्या कहता है।" राधाचरणने कहना प्रारम्भ किया—"मां, मुझे एक बातका बड़ा दुःख है।"

"क्या?"

"यही कि मैं मूर्ख पिताका पुत्र क्यों नहीं हुआ?"

मांने बेटेकी ओर कुछ आश्चर्यसे देख कर कहा—"ऐं, यह क्या बकता है।"

राधाचरण उत्तेजित स्वरमें बोला—"ठीक कहता हूँ मां! पिता

दुनियांको उपदेश देते फिरते हैं कि बाल-विवाह न करो, दहेज न लो, हिन्दू मात्रको अछूत मत समझो, ब्याह आदिमें वेश्याओंका नाच बन्द करो। परन्तु स्वयं ये सब कार्य करते जाते हैं। यह सब देखकर मुझे तो बड़ी लज्जा लगती है। यदि मूर्ख पिताका पुत्र होता तो दु:ख न होता। क्योंकि तब यह कहनेको तो होता कि पिताजी कुछ जानते नहीं हैं। अब मैं अपनी लज्जा कैसे दूर करूं। अपने मनको क्या कहकर सान्त्वना दूं।"

राधाचरणकी मांने अपने पतिकी ओर देखा। उनका विश्वास था कि सचको झूठ और झूठको सच प्रमाणित करनेवाले पति कुछ ऐसी बातें कहेंगे, जिससे पुत्रको सन्तोष हो जायगा। परन्तु कृपाशंकरका आसन खाली था। वे पुत्रकी बात आरम्भ होनेसे पहले ही उठकर बाहर चले गये थे।

(३)

आज कृपाशंकरके द्वितीय पुत्रके विवाहका दिन था। कृपाशंकरने खूब कसकर दहेज लिया था। विवाहमें वेश्या-नृत्यका भी प्रबन्ध था। राधाचरण इस उत्सवमें भाग नहीं लेना चाहता था। परन्तु मांने उसे बहुत दबाव डालकर भेजा था। जनवासेमें वह अपने दो-चार मित्रोंके साथ अलग बैठा था। शेष लोग वेश्या-नृत्य देखनेमें तल्लीन थे। जहां राधाचरण बैठा था, वहीं डफली बजानेवाले मेहतर भी बैठे थे। बड़े ध्यानसे वेश्याका एक गीत सुननेके पश्चात् एक मेहतरने कहा—"इसे गाना-वाना कुछ नहीं आता, इससे अच्छा तो मैं गा सकता हूँ।"

राधाचरणने पूछा—"सचमुच रे!"

"हां।"

"गा तो सही।"

मेहतरने अपनी वंशी उठाई और उच्च स्वरमें बजाना प्रारम्भ किया। सचमुच वेश्याका गाना फीका पड़ गया। पचासों लोग महफिलसे उठ कर राधाचरणके पास आ खड़े हुए और वाह-वाह करने लगे। एकने कहा—"उस चुड़ैलसे बोलते भी नहीं बनता और सब उसपर मरे जाते हैं। यह मेहतर इतनी मस्तानी वंशी बजाता है, फिर भी कोई इसका आदर नहीं करता।"

राधाचरण बहुत देरतक स्थिर न रह सका। उसने अपने स्थानसे उठकर मेहतरको हृदयसे लगा लिया और अपने गलेकी सोनेकी जंजीर उसके गलेमें डालकर कहा—"यह तेरा पुरस्कार है। अज्ञानावस्था में गुणीका अनादर करना क्षम्य है; परन्तु गुणोंका परिचय पा जानेपर गुणीको ठुकराना महापाप है। तू उस वेश्यासे लाख गुना अधिक आदरके योग्य है। आ, मेरे साथ मेरी खाटपर बैठ।"

मेहतरने बहुत हठ किया परन्तु राधाचरण न माना। उसे खींचकर उसने अपनी खाट पर बैठा ही लिया। दूसरे ही क्षण यह समाचार चारों ओर फैल गया। नाच-गान बन्द होगया। पण्डित कृपाशङ्करको क्रोधित हुए अब तक किसीने नहीं देखा था, परन्तु आज उनका क्रोध देखकर सब दङ्ग रह गये। बाघके समान वे उस बेचारे मेहतर पर टूट पड़े और उसे डण्डे मार कर भगा दिया। उसके बाद उन्होंने राधाचरण पर भी दो चार डण्डे जमाये और उसे भी वहांसे चले जानेको कहा।

लगभग आधी रात बीते कृपाशङ्करका क्रोध कुछ शान्त हुआ। तब उन्होंने पता लगवाया कि राधाचरण कहां है और उसकी क्या अवस्था है। न जाने क्यों उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। वे अपने बिस्तरपर पड़े-पड़े करवटें लेने लगे। अनेक यत्न करनेपर भी उन्हें नींद न आयी। अन्तमें वे उठे और टहलने लगे। टहलते-टहलते बहुत दूर निकल गये। एकाएक उनके कानमें वंशीकी धुन सुनाई पड़ी। चन्द्रमाके निर्मल प्रकाशमें उन्होंने देखा कि एक खुले खेतमें वही मेहतर अपनी वंशी बजा रहा है और उनका पुत्र प्रेमसे बैठा सुन रहा है। दोनों मग्न हैं—दोनोंके चेहरोंपर न तो किसी प्रकारकी उदासी है और न अपमान और शोककी छाया। बड़ी देरतक खड़े वे यह दृश्य देखते रहे। लौटते समय उनका हृदय रह-रहकर कह रहा था—"कृपाशंकर, तुम्हारे उपदेशोंने तुम्हारी स्त्रीके हृदयमें पैठकर तुम्हारे इस पुत्रकी रचना की है। इसलिये इसके कार्योंके कारण तुम्हीं हो और अब उसका सुधार करना तुम्हारे वशके बाहर है। अतः वह जो करता है, वही उसे करने दो।"

बच्चा किसका है ?

[१]

जब मैं टिकट लेकर आया तब देखा कि पत्नीजी एक नवजात शिशुको गोदमें लिये असबाबके पास खड़ी हैं। जाड़ेकी रात थी। मैंने स्टेशन-की घड़ीकी ओर देखा, साढ़े तीन बजे थे। गाड़ी अभी प्लैटफार्मपर नहीं आयी थी; पर मुसाफिरोंकी तादाद बढ़ रही थी। अन्धकार, कुहरा और प्रकाशका अजीब सम्मिश्रण था।

'यह लड़का किसका है?' मैंने आश्चर्यसे पूछा।

'चुप! चुप!', एक विचित्र प्रकारकी प्रसन्नतासे अंकित अधरोंपर अँगुली रखते हुए, उन्होंने कहा।

वे मेरे और करीब आ गयीं और बोलीं—'इसे हम घर ले चलेंगे, और अपना लड़का कहेंगे।'

सन्तानके लिये हर प्रकारका प्रयत्न करके वह हार गयी थीं। जीवनमें उनके लिये कोई आनन्द न रह गया था। नारी जीवनकी सफलता वह माता बनकर बच्चोंपर शासन करनेहीमें समझती थीं। मैंने उन्हें पाश्चात्य स्त्रियोंके ऐसे आख्यान सुनाये थे, जिनमें इस बातपर जोर दिया गया था कि सन्तान उत्पन्न करना या गृहस्थीकी देख-भाल सब स्त्रियोंका काम नहीं है। जो स्त्रियां समाज और देशकी सेवा करना चाहती हैं, जीवनके चमकदार कार्य-क्षेत्रोंमें प्रविष्ट होकर नाम पैदा करना चाहती हैं, उन्हें इन झंझटोंसे बचे रहना चाहिये। पर मेरे इन उपदेशोंका उनपर कोई असर न पड़ा था। इस सम्बन्धमें उनकी व्याकुलता देखकर मैं सोचने लगा था कि यदि मैं कहींसे लाकर इनकी गोदमें एक बच्चा, चाहे वह कुत्तेका पिल्ला ही हो, न दूँगा तो यह पागल हो जायंगी।

मैंने धीरेसे पूछा—'किसीका चुरा तो नहीं लिया ?'

'नहीं, ईश्वरने दिया है। ओह ! जरा इसकी आंखें तो देखो, कितनी बड़ी-बड़ी हैं।'

मैंने बच्चेको गौरसे देखा। जान पड़ता था, इसको संसारमें आये तीन चार दिनसे अधिक नहीं हुए। पर इतने ही समयमें जैसे उसने बहुत जमाना देख लिया हो। वह गम्भीर भावसे मेरी पत्नीके मुखकी ओर देख रहा था। मानो, कह रहा था—'इस संसारमें मेरी एकमात्र मददगार तुम हो, मुझे छोड़ना मत।'

मैंने फिर पूछा 'बच्चा कहां मिला ?'

'मेरी इसी सन्दूकपर लेटा हुआ था। जैसे कोई लिटा गया हो। जरा इसकी पोशाक तो देखो। कुर्ता कितने मुलायम ऊनका बना है,

और टोपी कितनी सुन्दर है। इसका छोटा-सा लिहाफ भी क्या कारीगरीके साथ बनाया गया है। इसके मा-बाप जरूर बड़े सम्पन्न प्राणी होंगे ?'

'पर हैं नालायक—कहो, कोई बच्चेको इस तरह स्टेशनपर फेंकता है ?'

मैंने जोर-जोरसे चिल्लाना शुरू किया—'बच्चा किसका है ? बच्चा किसका है ?'

प्रतिध्वनिके सिवाय, मुझे कहींसे कोई उत्तर न मिला।

जब हमलोग गाड़ीमें बैठे तब देखा कि देवीजीने दूध खरीद लिया है और स्वच्छ कपड़ेके फाहेसे बच्चेके मुँहमें वह दूधकी बूँदें टपका रही हैं। और बच्चा बार-बार जीभ निकाल कर अपने होंठ चाट रहा है।

मैंने उनके कानमें कहा—'बड़ी भाग्यवती हो, बिना कष्ट, बिना परिश्रम, अपनी इच्छा पूर्ण कर ली। इस प्रकार बच्चे मिलने लगें तो स्त्रियां अपने पतियोंसे बात तक न करें।'

देवीजीने मेरी यह बात नहीं सुनी। वे शेखचिल्लीकी इमारतें खड़ी कर रही थीं।

[२]

उपर्युक्त घटनाको आठ साल हो गये, वह बच्चा मेरे ही घरमें अब है। लोग उसे हमारा ही पुत्र समझते हैं। कभी किसीको सन्देह नहीं हुआ कि वह बच्चा दूसरेका होगा। पर मेरी स्मृतिमें जाड़ेकी रातका वह स्टेशन, जहां वह बच्चा मिला था, अब भी ताजा है। मानो कलहीकी बात हो। मेरी पत्नीको सब भूल गया है। कभी-कभी वे सोचने लगतीं

हैं कि बच्चा उन्हींके पेटसे उत्पन्न हुआ है। वह रात और वह स्टेशन उनकी बेहोशीका स्वप्न-चित्र मात्र है। पर मुझे कुछ नहीं भूला। मैं अब भी घण्टों इस बातपर बिचार करता हूँ कि हमारे असबाबपर वह बच्चा कौन रख गया और क्यों रख गया? और यदि किसी दिन वह एकाएक उपस्थित होकर कह उठे—'मेरा बच्चा मेरे हवाले करो—तो?' इसलिये मैंने बच्चेसे कोई विशेष सम्बन्ध भी नहीं रखा। मैंने बार-बार अपनी पत्नीको भी समझाया कि इस बच्चेको बिदा करनेके लिये सदैव तैयार रहो। जिसने इसे एकाएक हमें दिया है, वह एकाएक हमसे छीन भी सकता है। यह तो हो नहीं सकता कि कोई ऐसे सुन्दर बच्चेको भूलसे वहां रख जाय। जिसने रक्खा होगा, कुछ समझ-सोचकर ही रक्खा होगा। और यदि किसीने भूलसे रख दिया हो, किसी पर्देनशीन महिलाने अपना असबाब समझ कर वहां लिटा दिया हो और उठाना भूल गयी हो, या जल्दीमें चकबका गयी हो, तो? बेचारी कितनी दुःखी होगी। जिसका बच्चा होगा, वह कितना चिन्तित होगा? क्या हमारा फर्ज यह नहीं था कि बच्चेके मा-बापका पता लगाते और उसे उनके हवाले करते?

इस सम्बन्धमें सारी बेफिक्री पत्नीके हवाले, और सारी फिक्र मेरे ऊपर टूट पड़ी थी। बच्चा किसका हो सकता है, यह जाननेके लिये मेरी इच्छा दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती और अपनी सीमा पार कर रही थी। कभी-कभी मैं सोचता था, इस समस्याको समाचारपत्रोंमें छपवा दूं, और बालकके वास्तविक अधिकारीका पता लगाऊं। पर भेद खुलनेपर यदि बच्चा हाथसे जाता रहा तो पत्नीको कितना कष्ट होगा, यह सोचकर इच्छाओं-पर संयमकी नित्य नूतन शिलाएं रखता चला जा रहा था। अन्दर,

हृदयमें, तूफान उठते और विलीन होते थे; पर बाहरसे शान्त बना बैठा था। मनसे इस प्रकार युद्ध करते-करते मेरा शरीर भी क्षीण होने लगा था। कभी-कभी जब उलझन बहुत बढ़ जाती थी तब ऐसा जान पड़ता था, कि मानो यह बच्चा यम हो; मोहक रूप धारण कर मेरे प्राण लेने आया हो।

प्रत्येक अपरिचित व्यक्तिसे बात करते समय मुझे भय लगता था कि कहीं वह कह न बैठे कि बच्चा मेरा है। इसी मानसिक स्थितिमें मैं प्रायः पत्नीसे कह दिया करता था—'इस बच्चेसे एक न एक दिन हमें अलग होना पड़ेगा, इसको इतना प्यार मत करो।' पर मुझे सदैव एक उत्तर मिलता था—'तुम फिक्र मत करो।'

जब मेरी बदली कानपुरको हुई तब मेरी चिन्ता और भी बढ़ी। इसका कारण यह था कि बच्चा हमें कानपुर स्टेशन ही पर मिला था; और मैं सोचता था कि कानपुरमें, सम्भव है, इस रहस्यके जाननेवाले मौजूद हों। कमसे कम वह आदमी तो होगा ही, जिसने हमारे अस-बाबपर बच्चेको रखा था; और सम्भव है, वह हमें पहचानता भी हो। पर पत्नीने यहां भी वही पूर्ववत् बेफिक्री दिखलाई।

कानपुरमें मेरे एक मित्र, श्रीयुत धनानन्द थे। वह सिविल लाइन्स-में अपने बापके बनवाये हुए बंगलेमें रहते थे, और धन-जनसे उनका घर पूर्ण था। कोई ऐसा साल खाली न जाता था जब उनके घरमें कोई न कोई शिशु उत्पन्न न हो। अति वंश-वृद्धिसे वह ऊबेसे रहते थे। मेरी पत्नीकी सन्तानके लिये प्रबल इच्छाकी बात जब वह सुना करते थे तब कहा करते थे—'आपलोग सौभाग्यशाली हैं। जितनी ही कम सन्तान

हो, उतना ही अच्छा; क्योंकि सन्तानके साथ मनुष्यके हृदयमें पचासों किस्मकी चिन्ताएं भी जन्म लेती हैं; और यदि आपको बिना सन्तानके सुख नहीं मिलता तो दो-चार हमारे यहांसे ले जाइये।'

कानपुरमें रहनेका नया प्रबन्ध करनेसे पहले मैंने उन्हींके यहां ठहरना निश्चित किया। वह मेरे सहपाठी और बचपनके मित्र थे। मैं इस सम्बन्धमें उनसे सलाह लेनेकी इच्छा भी कर रहा था।

घनानन्दके बंगलेमें अपने लिये खास तौरसे अलग किये गये एक कमरेमें बैठा मैं अपने इसी चिर-परिचित विषयपर विचार कर रहा था कि मेरी दृष्टि दीवालपर टंगे हुए एक चित्रपर पड़ी। इसी समय मेरी पत्नी भी वहां आ गयी। उन्होंने पूछा—'चित्रमें क्या देख रहे हो?'

मैंने कुछ आश्चर्य और कुछ उत्तेजनासे कहा—घनानन्दकी शरारत।

मेरी पत्नी मेरे कथनका अर्थ समझीं या नहीं, इसे तो मैं नहीं कह सकता। पर चित्रको देखते ही वह चौंक उठीं—क्यों, यह तो मेरे बेटेका चित्र है? यहां कैसे आया? किसने खींचा?'

मैंने कहा—यह घनानन्दका बचपनका चित्र है। नीचे उसका नाम और उम्र लिखी है। यह चित्र यहां क्यों टांगा गया है, जानती हो? यह बतानेके लिये कि हमारे बेटेमें और इस चित्रमें कितनी समानता है।'

पत्नीजीकी सारी बेफिक्री हवा हो रही थी। उनकी भी समझमें जैसे सब बातें आ रही थीं। उन्होंने कहा—'तो क्या घनानन्दजी हमसे अपना लड़का वापस ले लेंगे?'

'वापस लें या नहीं, कमसे कम यह तो उन्होंने कौशलसे बता ही दिया कि यह लड़का हमें उन्होंने दिया। वह कहते ही थे कि दो-चार

हमारे यहांसे ले जाओ। इस तरह शायद हम न ले जाते। इसलिये उन्होंने स्टेशनपर हमारे असबाबपर एक लड़का चुपकेसे रख दिया होगा।'

'वे तुम्हारे कितने अच्छे मित्र हैं कि उन्होंने तुम्हारी एक बड़ी चिंता दूर की और किसी प्रकारका एहसानका भाव भी नहीं दिखाया।'

मेरी समझमें नहीं आ रहा था कि घनानन्दके इस व्यवहारसे प्रसन्नता प्रकट करूं या नाराजी। मित्रकी दृष्टिसे उनका यह कार्य प्रशंसनीय अवश्य था, पर इतना छिपाना, मित्रको इतना उलझनमें डालना, क्या उचित था? घनानन्दपर उस समय मुझे क्रोध भी आ रहा था और हृदयमें उसके लिये कृतज्ञताके भाव भी उमड़ रहे थे।

(३)

पत्नीके मना कर देनेसे मैंने इस सम्बन्धमें घनानन्दसे कोई बात न की, क्योंकि इस बातका पूर्ण निश्चय नहीं था कि बालक उन्हींका है। पर न जाने क्यों मेरे हृदयमें यह विश्वास घर कर गया था कि यदि बालक घनानन्दका नहीं है तो किसी औरका हो भी नहीं सकता। और यदि घनानन्दका है तो मुझे फिक्र करनेकी आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि वह मेरे मित्र हैं। और उनका उद्देश्य पवित्र है।

घनानन्दके बङ्गलेसे निकलकर हमने दूसरी जगह रहनेका प्रबन्ध किया ही था कि मुझे कुमारी स्वरूपबालाका एक पत्र मिला। उनके यहां मैं पत्नी और पुत्र सहित एक प्रीति-भोजमें सम्मिलित होनेके लिये निमंत्रित किया गया था। कुमारी स्वरूपबाला कानपुरकी एक प्रतिष्ठित महिला थीं और उनके यहां निमंत्रित किये जानेका मुझे गर्व था। मैं उनसे मिला कभी नहीं था, पर उनकी प्रशंसा मैंने बहुत सुनी

थी। उनके हाथमें कानपुरकी कई बालिका-पाठशालाओंका संचालन था, और वह स्त्रियोंका एक पत्र भी निकालनेका विचार कर रही थीं। उनके पिता बड़े धनी थे, और वह उनकी एकमात्र उत्तराधिकारिणी थीं।

जिस समय सब मेहमान बिदा हो रहे थे, कुमारीजीने मेरी पत्नीके कानमें कहा—'मिसेज परमानन्द, मैं आपसे और आपके पतिसे एक पारिवारिक प्रश्नपर कुछ पूछना चाहती हूँ, क्या आप थोड़ा और ठहरनेका कष्ट करेंगी?'

हमलोग प्रसन्नतापूर्वक वहाँ ठहर गये। अतिथियोंके चले जानेके पश्चात् विद्युत् प्रकाशसे जगमगाता हुआ वह कमरा इतना एकान्त और शान्त जान पड़ा; मानो गुप्त वार्तालापके लिये उससे अधिक उपयुक्त कोई स्थान हो ही नहीं सकता है।

कुमारीजी मेरी पत्नीके पास बैठी थीं। वह उस कुर्सीके पास आयीं, जिसपर हमारा बालक बैठा था। बालकको उन्होंने उठाकर गोदमें बैठा लिया और स्वयं कुर्सीपर बैठ गयीं। फिर उन्होंने बालकको बड़े प्यारसे चूमा और छातीसे लगाया। वह बोलीं—'मिस्टर परमानन्द, स्त्रीमें मातृ-स्नेह स्वाभाविक होता है। स्त्री किसीके भी बच्चे को अपनी ही सन्तानके भांति प्यार कर सकती है।'

मेरी समझमें नहीं आया कि क्या कहना चाहती हैं। यदि उन्हें सन्तानकी इच्छा है तो दूसरोंके बेटोंसे कबतक काम चलायेंगी। इसके लिये तो ब्याह करना होगा, और गृहस्थाश्रमकी झंझट उठानी पड़ेगी।

मेरे या मेरी पत्नीके मुँहसे कोई उत्तर न पाकर वह बोलीं—'एक बात पूछूं?'

'जरूर पूछिये।' मैंने कहा।

'यह बालक किसका है?'

'मेरा है।' मेरी पत्नीने कहा।

'नहीं मेरा है।' उन्होंने बालकको और भी अधिक जोरसे अपने हृदयसे चिपटाया। जान पड़ता था, वह अपना हृदय फाड़ रही हैं, और अभी, देखते-देखते उसीमें वह बालक और उसकी सारी कहानी समा जायगी। मैंने आपत्तिमें फंसे मनुष्यकी भांति कुछ अधीर होकर कहा—'कुमारीजी, आप यह क्या कह रही हैं?'

'ठीक कह रही हूँ,' उन्होंने उत्तर दिया।

मेरी पत्नीनें कुछ कहना चाहा, पर उनके मुँहसे एक वाक्य न निकला।

कुमारी स्वरूपबालाने कहना शुरू किया—'ओफ, वे दिन कितने निर्दय थे! मुझे विवश होकर जाड़ेकी रातमें प्राण देनेके लिये निकलना पड़ा। वह कितनी भयानक रात थी और वह स्टेशन कितना डरावना था, आप लोगोंको याद है।'

हमलोगोंने भय, चिन्ता और निराशापूर्ण नेत्रोंसे एक दूसरेकी ओर देखा। कुमारी स्वरूपबालाने आगे कहना आरम्भ किया—

'यह बालक मेरी जीवनकी सबसे बड़ी भूल है। मेरे पिताने मुझे सब प्रकारकी स्वाधीनता दी थी। स्त्री और पुरुषमें कोई भेद है, यह वह नहीं मानते थे। किसीसे मिलने-जुलनेसे उन्होंने कभी मुझे मना नहीं

किया। जीवनकी पिछली बातोंपर दृष्टि डालती हूँ तो कहना पड़ता है कि मैं इस स्वाधीनताकी कतई अधिकारिणी नहीं थी; पर इससे क्या ? उनके उच्च आदर्शकी मैं आज भी भक्त हूँ।

'वे अजीब दिन थे। मेरे जीवनमें, यौवनके आरम्भ-कालमें एक ऐसे समयका आना अनिवार्य था जब मैंने प्रेमकी ज्योति देखी। उस दिन प्रकाशमें मुझे सारा संसार प्रेममय प्रतीत हुआ। जो पुरुष मेरे निकट आया उसे मैंने अपना प्रेमी, अपने प्रेमका पुजारी समझा। अब सोचती हूँ कि यह कितनी बड़ी भूल थी। पर इस भूलका शिकार तो सभीको, कमसे कम सभी स्त्रियोंको, होना पड़ता है। जीवनके यौवनपूर्ण आरम्भ-कालमें घनानन्दको मैंने प्यार कर इस भूलका सबसे कटु अनुभव किया। अब तो मैं समझती हूँ कि पुरुष स्त्रीके शरीरपर अधिक मुग्ध होता है। पर तब यह न समझती थी। घनानन्दने जब मुझसे प्रेमकी भिक्षा मांगी, जब भिखारीकी भांति उसने मेरे रूप-महलके सामने हाथ फैलाया, तब मैं ऐसी कंजूस नहीं थी जैसी आज हो गयी हूँ। मैंने अपना सर्वस्व उसको सौंप दिया। बिना यह सोचे कि वह प्रेमका अधिकारी है या नहीं, मैं उसके हाथका खिलौना बन गयी।

'पर उसका प्रेम वास्तविक प्रेम नहीं था। इस बच्चेने इस बातको सूर्य्यका प्रकाश देखनेसे पहले ही बता दिया था। जो कुछ हो गया था, उसके लिये वह लज्जित था। मेरे पिताने उसको बुलाकर जब कैफियत तलब की तब उसने मौनका आश्रय लिया। वह विवाहित था। कई बच्चोंका पिता था और इतने पर भी एक कुमारीके जीवनको मिट्टीमें मिलानेका श्रेय उसने प्राप्त किया। उसने मेरे चरणोंपर मस्तक रख

दिया और क्षमाकी प्रार्थना की। मैं जली जा रही थी, उठकर माके पास चली गयी। अन्तमें इस बातपर फैसला हुआ कि घनानन्द अपने जीवनकी भूलके इस सुन्दर फलको स्वीकार करे।

'इसी फैसलेके अनुसार, जन्मके तीसरे दिन मेरी माताने घनानंदको बुलाकर उसकी दोनों फैली हथेलियोंपर इस बालकको लिटा दिया। मैंने अपने हाथसे इसका कुर्ता और टोपी सिया था और इसके लिये दुलाई बनाई थी। जब घनानन्द बालकको लेकर चला तब मुझे जान पड़ा जैसे वह मेरे हृदयमें नश्तर लगाकर मेरे शरीरका सारा रक्त निचोड़कर लिये जा रहा है। कह नहीं सकती कि उस समय मैं कितनी बेचैन और विकल थी। मेरी इच्छा हुई कि प्राण दे दूं।

'उस रात मुझे नींद न आई। बिस्तरपर पड़े पड़े सदाके लिये आंख मूंद लेनेकी बात सोचती रही। एकाएक जीमें आया कि रेलगाड़ीके नीचे कटकर मर जाऊं। मैं घरसे निकल पड़ी, स्टेशनपर आई, और बच्चेको, मिसेज परमानन्द, तुम्हारी गोदमें देखा। तुममें कितना मातृ-प्रेम उमड़ आया था। यह भी देखा। मुझे, अनुभव हुआ कि मुझमें और तुममें कोई भेद नहीं है। सन्दूकपर लिखा था तुम्हारा पता। मिस्टर परमानन्द ! तुम्हारा पता नोट करके चली आई और बिस्तरपर ज्यों-की-त्यों पड़ रही। मुझे जीनेकी इच्छा हुई।

'इस घटनाके एक वर्ष बाद मेरा ब्याह हुआ। पति-देवता साक्षात् विष्णुके अवतार प्रतीत हुए। उनके निकट भी मैंने आत्मसमर्पण कर दिया। जब उनको सर्वस्व दे चुकी तब उनसे जीवनका यह सबसे भयानक अनुभव क्यों न बताती ? हृदय खोलकर उनसे अपनी सारी राम-

कहानी कह दी। समझा था, वह मुझपर दया करेंगे, मेरे और निकट आ जायेंगे, मेरा और उनका हृदय मिलकर एक गतिसे धड़केगा। पर बिल्कुल उलटा हुआ। मैं उनके लिये पराई वस्तु हो गयी। उसी समय वह मुझे लेकर मेरे पिताके द्वारपर पहुँचे। दरवाजा अन्दरसे बन्द था। आवाज लगाई और नाम लेकर पिताजीको पुकारा। पिताजी बाहर आये तो उन्होंने कहा—'यह अपनी लड़की सम्भालिए, मेरे घरमें इसके लिये स्थान नहीं है।' और चलते बने।

'पिताजीके काटो तो खून नहीं। उन्होंने क्रोधावेशमें मुझसे पूछा—'तू इस बातको गुप्त नहीं रख सकी।'

'नहीं।'

'तो जहां तेरी इच्छा हो जा, शैतान लड़की मेरे घरमें भी तेरे लिये स्थान नहीं है।'

'वह फौरन घरके अन्दर चले गये और द्वार बन्द कर लिया। अपने पितासे भी इस प्रकार तिरस्कृत होनेपर मैंने पुरुष हृदयकी कठोरता और निर्दयताको स्पष्ट देखा। झूठी शान और झूठी इज्जतने मानवजीवनको कितना गिरा दिया है, यह मैंने अच्छी तरह जान लिया। पर इस अनुभवसे लाभ उठानेका अब अवसर कहां था। मैं पथकी भिखारिणी थी। मेरा शरीर, सड़कपर फेंके हुए गोश्तकी तरह, चील, कौवों और कुत्तोंके लिये ही अरक्षित पड़ा था। कमसे-कम उस समय मुझे ऐसा ही प्रतीत हुआ।

'पर मेरे पिताजीका क्रोध सदैव क्षणिक होता था। तुरन्त ही वह बाहर निकले और बोले—'बेटी घरमें आओ, तुम स्वयं बहुत दुखी हो, उसपर और दुःख नहीं लादूंगा।'

'उन्होंने मुझे छातीसे चिपटा लिया और जोर-जोरसे रोने लगे। मैं भी खूब रोई। मेरी मां अबतक भी चुप थीं, कदाचित् उनके आंसू ही सूख गये थे। पड़ोसवालोंको मालूम हुआ कि ससुरालसे मैं मायके आ गयी हूँ।

'तबसे इसी घरमें हूँ। उसी प्रकार स्वाधीन और स्वतन्त्र। पर अब फूंक-फूंककर कदम रखती हूँ। जीवनमें जो कुछ अनुभव किया है उससे लाभ उठानेका अवसर मिला है तो क्यों न उठा लूं?'

मैंने देखा कि वह बच्चेको और भी अधिक स्नेहसे अपने हृदयसे चिपटाती जा रही हैं। इसीसमय उनके वृद्ध पिताने उस कमरेमें प्रवेश किया और एक विचित्र प्रकारकी हंसी हंस कर वह बोले—'मैं इतना बूढ़ा हो गया पर आजतक यह न समझ सका कि जीवन क्या है, सत्यको छिपाना या उसको प्रकट कर देना?'

अनुराग

(१)

देवकीने अपनी खिड़कीपर झूलते हुए चिककी आड़से देखा कि कृपाशंकर सुर्ख आंखें किये दो छोटे और असहाय बच्चोंको चाकू दिखा कर डरा रहा है।

"अगर तुमने किसीसे कहा कि तुम्हारे मां-बाप जिन्दा हैं तो तुम्हारे पेटमें यह चाकू भोंक दूंगा।"

कृपाशंकर छोटे बच्चेके पेटतक चाकू ले गया। वह एक दीवालके सहारे खड़ा था। बच्चेने भयसे अपनी आंखें बन्द कर लीं और अपने पेटको इतना खलाया कि वह पीठसे मिल गया। इस प्रकार वह अपने पेटको चाकूसे दूर ले गया। बड़ा भाई जोरसे चीख उठा।

अब उसकी बारी थी। कृपाशंकरने चाकूकी धार उसकी नाकपर

रख दी और कहा—"खबरदार! मुंहसे जरा भी आवाज निकली कि मैंने नाक काटी।"

बड़े भाईकी घिग्घी बंध गई।

कृपाशंकरने चाकू मोड़कर जेबके अन्दर रख लिया और गरजकर कहा—"जाओ! घरके अन्दर बैठो। बाहर मत निकलना। खबरदार!"

बिल्लीके पंजोंसे छूटे चूहेकी तरह दोनों भाई सकपकाए हुए घरके अन्दर चले गये।

देवकीने दोनों बालकोंका भयग्रस्त चेहरा देखा और उनकी बेबसी का अनुमान किया। उसके दो बच्चे इतने ही बड़े होकर मर गये थे। उसे अपने उन दोनों बच्चोंकी याद आ गई और उसके हृदयमें इन दोनों असहाय बच्चोंके प्रति सहानुभूतिका समुद्र लहरा उठा।

वह कुछ उत्तेजित-सी होकर अपने कमरेमें इधर-उधर टहलने लगी। इन बच्चोंको वह कृपाशंकरके चंगुलसे कैसे छुड़ावे? यह प्रश्न उसके हृदयमें बार बार उठने लगा। वह उसी खिड़कीके पास फिर आकर खड़ी हो गयी।

देवकीका यह मकान शहरके एक घने मुहल्लेके एक तंग रास्तेमें था। रास्ता उत्तर-दक्षिण लगभग ४०० गज लम्बा था। देवकीकी खिड़कीकी बनावट इस तरहकी थी कि वहांसे खड़ी होकर वह पूरा रास्ता देख सकती थी। जेठकी दोपहरी थी। लगभग तीन बज चुके थे, फिर भी रास्तेमें सन्नाटा था। कृपाशंकर रास्तेके उत्तर वाले हिस्सेमें जहां उसके मकानकी दीवालकी छाया पड़ रही थी, खाट बिछाये लेटा था। खाटके इर्द-गिर्द उसने पानी गिराकर जमीनको तर कर रक्खा था। तरी कुछ कम होते देख वह चिल्लाया—राधेश्याम!

"हां ! पण्डित जी !"

"एक डोल पानी और ले आ।"

बड़ा लड़का एक डोल पानी लाया और खाटके गिर्द गिराकर जाने लगा। कृपाशंकरने कहा—जरा पंखा तो ले आ। बड़ी गर्मी है।

लड़का घरके अन्दरसे ताड़का एक पंखा लाकर झलने लगा। कृपाशंकरको नींद आ गई। उसकी नाक घर घर बोलने लगी।

देवकीने अपना चिक हटाकर लड़केकी ओर इशारा किया। लड़केने वहींसे देवकीकी ओर देखा और आंखें नीची कर लीं। देवकीने धीरेसे ताली बजाकर लड़केका ध्यान अपनी ओर फिर आकृष्ट किया। इस बार लड़का देवकीकी ओर देखकर मुस्कराया। देवकीने अपनी अंगुलियोंके इशारेसे उसे अपने पास बुलाया। परन्तु लड़केकी आनेकी हिम्मत न हुई। उसने अपनी आंखें मटका कर कृपाशंकरकी ओर देखा। इसका अर्थ कदाचित यह था कि यह जालिम जग उठेगा तो मार ही डालेगा। देवकीने अपने इस मौन संभाषण द्वारा उन लड़कोंके प्रति इतनी सहानुभूति प्रकट की कि लड़का उसका भाव समझ गया और उसकी आंखें डबडबा आईं। वह एक हाथसे पंखा झलने लगा और दूसरेसे अपनी धोतीका छोर पकड़कर उससे अपने आंसू पोंछने लगा। लड़केकी यह अवस्था देखकर देवकीकी भी आंखें सजल हो उठीं।

इसी समय कृपाशंकरने करवट बदली। लड़केने अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया और देवकी भी झट चिक गिरा कर कमरेके अन्दर चली गई। उसका हृदय धक धक करने लगा। कहीं कृपाशंकरने उसे

लड़केसे इस प्रकार गुपचुप बातें करते देख न लिया हो कि बेचारेपर नई आफत आए।

थोड़ी देर बाद वह फिर खिड़कीके पास आई। पर अब न वहां कृपाशंकर था और न वह लड़का। केवल एक बेढंगी चारपाई पड़ी थी।

(२)

उस दिन शामको जब देवकीके पति दफ्तरसे आए तब उसने उनसे उन बच्चोंकी कहानी कही। देवकीके पति और कृपाशंकरकी जान पहचान बड़ी पुरानी थी। उन्हींकी सहायतासे कृपाशंकर इस नये मुहल्लेमें बसने आया था। उन्होंने अपनी पत्नीसे कृपाशंकरकी बड़ी तारीफ की और उसे बहुत ऊँचे दर्जेका समाज सुधारक बताया। पतिकी बात देवकीके हृदयको स्पर्श न कर सकी। उसने प्रस्ताव किया कि उन बच्चोंको उससे छीनना चाहिये, चाहे जैसे हो। अबोध बच्चोंके साथ जो इतना निर्दय व्यवहार कर सकता है—वह समाज सुधारक कदापि नहीं हो सकता।

पति पत्नीमें इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि बाहर गलीमें बड़े जोरका हल्ला हुआ। देवकी अपनी खिड़कीके पास चिकके पीछे, आकर खड़ी हो गई और वासुदेव—पति पत्नीके नाममें द्वापरयुगका यह अपूर्व संयोग आ मिला था—घरसे बाहर निकले।

पति पत्नी दोनोंने देखा कि लगभग बीस-पचीस चमारोंने बड़े-बड़े लट्ठ लेकर कृपाशंकरके मकानको घेर लिया है, वे उसे बुरी बुरी गालियां सुना रहे हैं, और घरसे बाहर निकलनेके लिये ललकार रहे हैं।

चमार उसी मुहल्लेके थे और उनमें अधिकांशको वासुदेव जानते थे। वासुदेवने उनमेंसे एकको अपने पास बुलाकर पूछा—क्या मामला है ?

"इसकी मौत आ गई है पंडितजी, और कुछ नहीं। आज हम लोग इसको बिना जानसे मारे न मानेंगे।"

"उसका कसूर क्या है ?"

"इसका कसूर बहुत बड़ा है। आज इसने हमारी ही बिरादरीकी एक औरतको बहकाकर घरमें बन्द कर लिया है।"

वासुदेवसे इतना कहनेके बाद वह आदमी दूने जोशसे बोला—"शैतानके चर्खे, दरवाजा खोलता है या नहीं !"

बाहर यह चिल्लाहट मची हुई थी और अन्दरसे कोई उत्तर नहीं मिलता था। जान पड़ता था जैसे कोई जीवित प्राणी उस घरमें हो ही नहीं।

इसी बीचमें एक दूसरा चमार वासुदेवसे आकर बोला—"पंडित जी ! आप भी तो इसी मुहल्लेमें रहते हैं। कभी किसी चमारके मुंहसे आपने कच्ची बात सुनी है ? चमारकी जाति सुननेके लिये बनी है, सुनानेके लिये नहीं। पर यह कृपाशंकर हम चमारोंसे भी गया बीता है। इसे मुहल्लेसे निकालना होगा। इसके रहते किसीकी इज्जत कायम नहीं रह सकती।'

खट-खटकी आवाजोंने वासुदेवका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित किया। उन्होंने देखा कि कुछ चमार कुल्हाड़े लाकर कृपाशंकरका दरवाजा तोड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं और कुछ उसके मकानपर पत्थर फेंक रहे हैं।

इधर यह काण्ड हो रहा था, उधर मकानके पीछेकी ओरसे एक चिल्लाया—"अरे ! भाइयो ! इधर दौड़ो ! शिकार हाथसे निकला जा रहा है।"

कुछ लोग लट्ठ घुमाते हुए उस ओर दौड़े। वासुदेव भी उस ओर बढ़े। उन सबने देखा, कृपाशंकर मकानके पीछेके हिस्सेकी नीची छत पर सीढ़ी लगाकर चढ़ गया है और अब उसी सीढ़ीके सहारे बाहरकी ओर नीचे उतरकर भाग जाना चाहता है।

कृपाशंकर नीचे जमीन तक भी न आया था कि दो चमारोंने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ लिया और बलपूर्वक नीचे उतार लिया। यदि मौकेपर वासुदेव भी न पहुँच जाते तो कृपाशंकरपर अच्छी मार भी पड़ती। उन्होंने बीचमें पड़कर कृपाशंकरको छुड़ाया और गलीसे घूमकर उसे उस स्थानपर ले आये जहां उनकी खिड़की थी और जहां देवकी चिककी आड़से यह सब काण्ड देख सकती थी।

बाहर सीढ़ी होनेसे पीछेकी छतकी ओरसे कृपाशंकरके मकानमें पहुँचना अब बहुत सरल हो गया था। दो तीन चमार उस रास्तेसे मकानके अन्दर पहुँच गए। उनमें अपनी बिरादरीकी स्त्रीका उद्धार करनेका इतना जोश था कि उस समय वे यह भूल गए कि वे कानून के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। इनमें दो तो मकानके हिस्सोंमें इधर-उधर घूमकर उस स्त्रीको तलाश करने लगे और एकने बाहरकी ओर का वह दरवाजा खोल दिया जिसके सामने चमारोंकी भीड़ कृपाशंकरको घेरे खड़ी थी और उसे तरह तरहकी गालियां सुना रही थी।

दरवाजा खुलते ही यह भीड़ भी मकानके अन्दर दाखिल हो गई।

थोड़ी देरमें ये लोग हाथ पकड़कर घसीटते हुए एक स्त्रीको मकानके बाहर ले आए। यही वह स्त्री थी जिसके कारण चमारोंमें यह हलचल थी। कृपाशंकरकी पत्नीने अपने बचोंको लेकर अपने आपको एक कमरेमें बन्द कर लिया था पर उन बेचारे दोनों बचोंको साथ ले जाना वह भूल गई थी जिन्हें देवकीने अपनी खिड़कीसे देखा था। ये दोनों बच्चे डरे हुए और रूआसेसे होकर इधर-उधर घूम रहे थे। घरमें सन्नाटा देखकर ये दोनों बाहर निकले और उन अपरिचितोंकी भीड़में कृपाशंकरको ही अपना सहायक समझकर उसके निकट जानेका प्रयत्न करने लगे।

मकानके बाहर एक चारपाई डाल दी गई थी जिसपर कृपाशंकर वासुदेवके साथ बैठा था। पास ही वह स्त्री सिर नीचा किए खड़ी थी और उसे एक चमार पकड़े हुए था। कृपाशंकरने सबको शान्त करके कहना शुरू किया—"मैं इस स्त्रीको बुलाने नहीं गया। उसे बहकाने भी नहीं गया। यह स्वयं मेरे पास आई है। आप लोग इससे पूछते क्यों नहीं? मैं तो यह कहता हूँ कि हिन्दू अपनी स्त्रीको आदरके साथ घरमें रखना जानता ही नहीं। इसलिए हिन्दू स्त्री घरसे निकल भागती है और विधर्मियोंके हाथ पड़ जाती है। मैं ऐसी स्त्रियोंको विधर्मी होनेसे बचाता हूँ। उनके कष्ट दूर करनेका प्रयत्न करता हूँ। धर्मकी सेवा करनेका यह अच्छा पुरस्कार आप लोग मुझे दे रहे हैं।"

सब चमार एक साथ बोल पड़े। कोई कुछ कह रहा था कोई कुछ। सबसे ऊँचा स्वर इस प्रकार सुनाई पड़ रहा था—"जो तुम्हारे गुन न जानता हो उसको यह उपदेश दो। भले घरोंकी स्त्रियोंको बहकाकर बेचना तुम्हारा काम है। तुम हिन्दू स्त्रीको मुसलमानके घरसे नहीं ईसाईके

घरसे नहीं, हिन्दूके घरसे ही बहकाकर लाते हो और जो भी ज्यादा दाम लगाता है उसके हाथ बेच देते हो। तुम्हारे जैसे सुधारक हर शहरमें दस बीस हो जायें तो हिन्दुओंका खातमा ही हो जाय।"

इस समय वे दोनों बालक कृपाशंकरके पास पहुँच गए थे। भय, क्रोध, लज्जा, ग्लानि और झुंझलाहटसे कृपाशंकर आपेसे बाहर हो रहा था। उसने बड़े लड़केके गालपर जोरका एक तमाचा लगाते हुए कहा—"चलो घरके अन्दर।"

सहानुभूतिके बदलेमें यह उत्तर पाकर बालक तिलमिला उठा। वह रोया तो नहीं पर वहांसे हटा भी नहीं। जाता कहां उनके वास्ते सर्वत्र सूना था। तमाचा बड़े लड़केके गालमें लगा था पर रोनेकी आवाज छोटे बच्चेके मुंहसे निकली। वह और भी भयभीत था। कृपाशंकरने उसे जोर से डांटकर कहा—"चुप।"

बड़े भाईने छोटेको गोदमें उठाकर उसे चुमकारना शुरू किया। दोनों बचोंका दयनीय मुख देखकर देवकीकी आंखमें आंसू आ गये। वह भूल गयी थी कि बाहर बहुतसे लोग खड़े हैं। उसके हृदयमें मातृस्नेहका कुछ ऐसा प्रवाह उमड़ा कि वह अपने घरके बाहर निकल आयी। धूल धूसरित छोटे बच्चेको उसने अपनी गोदमें ले लिया और बड़ेका हाथ पकड़कर अपने साथ घरके अन्दर खींच ले गयी।

(३)

दोनों बच्चोंको पाकर देवकी यह भूल गयी कि बाहर क्या हो रहा है। उसने उन दोनोंको झाड़ा-पोंछा, मुंह-हाथ धुलाया और बाजारसे जलेबियां मंगाकर खानेको दिया। जब बच्चे खा-पी चुके तब देवकी उन्हें

उस बड़े कमरेमें ले गयी जिसमें उसके बच्चे खेला करते थे। उसके बच्चोंकी चाभीकी मोटर, नाचता बन्दर और बोलती चिड़िया, ये तीन खिलौने अभी रखे थे। देवकीने एक-एक करके तीनों खिलौनोंकी करामात बच्चोंको दिखलाई और पूछा—तुम इनमेंसे कौन-सा लोगे? छोटे बच्चेने तीनोंकी तरफ हाथ बढ़ाया पर बड़ेने उसे रोककर कहा—नहीं, पण्डितजीकी लड़की छीन लेगी। यहीं आकर हम खेल जायंगे।

थोड़ी ही देरमें बच्चे देवकीसे हिलमिल गये। देवकीने पूछा—तुम्हारा घर कहां है?

छोटे बच्चेने कृपाशङ्करके मकानकी ओर उँगली उठाई। बड़ेने कहा—"यह नहीं जानता। हमारा घर मिर्जापुर जिलामें गंगाके किनारे सतगवांमें है। सात गांव पास ही पास हैं, इसलिये गांवका नाम सतगवां पड़ा है। हमारे गांवमें स्कूल है। मैं उसमें पढ़ता था। तीसरा दर्जा इस साल मैं पास करता। पर अब तो उस गांवमें पहुँचना मुश्किल है।"

देवकी बोली—"मुश्किल क्यों है? जो गंगा तुम्हारे सतगवांमें हैं वही यहां बनारसमें भी हैं। यहांसे गंगाके किनारे किनारे मांगता-खाता कोई भी आदमी सतगवांतक पहुँच सकता है।"

बड़े लड़केने कहा—"यह मैं जानता हूँ। कई बार मनमें आया कि एक दिन चुपचाप खिसक दूं। पर तुम देखती हो, मेरा भैय्या कितना छोटा है। यह चल नहीं सकता। मैं इसको गोदमें लेकर एक घण्टेका रास्ता चार घण्टेमें काटकर जाऊं भी तो राहमें इसे खिलाऊँ क्या? मांगनेसे कुछ न मिले तो मैं भूखा भी रह सकता हूँ पर बिना खाए यह कैसे जियेगा? इसीसे हिम्मत नहीं पड़ती।"

देवकीने मन ही मन बालककी समझदारीकी प्रशंसा करते हुए कहा—यदि मैं तुझे अपने बाबूजीके साथ रेलपर बैठालकर तेरे गांव पहुँचवा दूं तो?

बालककी आंखें एक विचित्र प्रकारके कृतज्ञताके भावसे चमक उठीं। अबतक किसी मनुष्यने उसके साथ ऐसी हमदर्दी न दिखाई थी। उसने देवकीके चरणोंपर मस्तक रख दिया और कहा—"मां जीवन भर तुम्हारा उपकार मानूंगा।"

देवकीने उसे उठाकर छातीसे लगा लिया और कहा—"डरो मत! धैर्य रखो। मैं तुम दोनों भाइयोंकी रक्षा करूंगी। अब तुम्हारा कोई कुछ बिगाड़ न सकेगा। तुम मेरे घरसे बाहर मत निकलना।"

"और जो पण्डितजी जबरदस्ती पकड़ ले जायं?"

देवकीने आलमारीमें रखी अपने स्वर्गीय पुत्रकी नकली बन्दूक उठाकर कहा—"मैं इससे तुम्हारे पण्डितजीको मार भगाऊंगी।"

दोनों बच्चे हँस पड़े। उन्हें देवकी पर कुछ भरोसा हुआ। वे और भी ढिठाईसे बातें करने लगे।

"तुम्हारे मां बाप कहां हैं?" देवकीने पूछा।

"यह मत पूछो।" बड़े लड़केने चौकन्ना होकर कहा।

पर देवकीने जब बहुत आग्रह किया तब बड़े लड़केने पहले उससे प्रतिज्ञा कराई कि वह किसीसे जिक्र न करेगी। तब उसके कानके पास मुंह ले जाकर धीरे-धीरे कहा—"मेरी मां ने दूसरा पति कर लिया है। मेरे दादा गांवमें होंगे। हम दोनोंको वे बहुत प्यार करते थे। हमें न पाकर बहुत दुःखी होंगे। पर आप तो कहती हैं कि आप मुझे पहुँचवा देंगी। आज ही रात पहुँचवा दें।"

देवकीने पूछा—"तुम्हारी मां तुम्हें छोड़ कर कैसे चली गई ?"

"पंडितजीने उसके ऊपर जादू कर दिया था।"

"तुम्हारी मां अपने दूसरे पतिके साथ कहां रहती है ?"

"यह पंडितजीको मालूम है। उन्होंने ब्याह कराया है।"

इस प्रकार देवकी और उन बच्चोंमें बहुत देर तक बातें होती रहीं। बातोंके सिलसिलेमें देवकीने उन बच्चोंके विषयमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर ली।

एकाएक कृपाशंकरका कर्कश स्वर उन सबके कानमें गूंज उठा—राधेश्याम !

दोनों बच्चों पर जैसे दुःखका पहाड़ टूट पड़ा। क्षण भर पहले उनके चेहरोंपर जो प्रसन्नता थी वह गायब हो गयी थी और वे भय-त्रस्त हो उठे थे। छोटा बच्चा दौड़कर देवकी की गोदमें छिपनेका प्रयत्न करने लगा। बड़े भाईके मुँहसे शब्द न निकले। वह एक अपराधीके समान निराश भावसे खड़ा इधर उधर देखता रहा।

कृपाशंकरने फिर पुकारा—"राधेश्याम !"

इस बार वह मौन न रह सका। "हां पंडितजी !" कहता हुआ मकानके बाहर निकल गया।

कृपाशंकरने अर्थभरी क्रूर दृष्टिसे उसकी ओर देखा। इतने ही से राधेश्याम उसके मनका भाव ताड़ गया। वह तत्काल मकानके भीतर देवकीके पास पहुँचा और अपने छोटे भाईको साथ ले जानेका आग्रह करने लगा। छोटा भाई चीखने लगा। देवकीने भी उसे रोकना चाहा। पर बड़े भाईने कहा—"मां, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। इस

समय जाने दो। कल जब पंडितजी घरमें नहीं रहेंगे हम लोग छिप कर आवेंगे।"

देवकीने बड़े भाईके चेहरेकी ओर देखा। उसका बेबसीकी व्यथाको व्यक्त करनेवाला मुखड़ा अपनी मौन भाषामें जो विनय कर रहा था देवकी उसको अनसुनी नहीं कर सकी। उसने उसे छोटे बच्चेको बल-पूर्वक अपनी गोदसे खींच ले जाने दिया।

बच्चोंके चले जानेपर भरे हुए हृदयके साथ वह फिर अपनी खिड़की के पास भूलते हुए चिकके पीछे आकर खड़ी हो गई। गलीमें अब सन्नाटा था। कृपाशंकर उसके पतिसे घुल-घुल कर बातें कर रहा था।

बच्चोंके बाहर निकलने पर कृपाशङ्करका ध्यान उनकी ओर गया। उसने अपनी क्रूर दृष्टि उनपर ऐसे गड़ा दी जैसे कोई डाकू किसी भोले व्यक्ति पर पिस्तौलका निशाना लगाता है। फिर जैसे सरकस करनेवाला पशुओंको अपनी जादूकी छड़ीसे जिधर चाहता है, ले जाता है। वैसे ही कृपाशङ्करने उन्हें अपने दृष्टि-दण्डसे अपने मकानके भीतर कर दिया। दोनों बच्चे नेवलोंकी तरह झिझकते, आगे बढ़ते, रुकते, पीछे मुड़कर देखते अपने कैदखानेमें चले गए।

(४)

कृपाशङ्कर और वासुदेव बहुत देरतक बैठे बातें करते रहे। देवकीने चिककी आड़से उनकी बातें सुननेकी चेष्टा की। पर वे बहुत धीरे-धीरे बोल रहे थे। इसलिए देवकी कुछ समझ न सकी। पर उसने अनुमान किया कि उन्हीं दोनों बच्चोंकी चर्चा हो रही है।

कृपाशङ्करसे छुट्टी पाकर वासुदेव जब अपने घरके भीतर पहुँचे तब देवकीने पूछा—"उस स्त्रीका क्या हुआ ?"

"जिसकी स्त्री थी वह अपने साथ ले गया। विवाहिता नारीको इस प्रकार अपने घरमें रखनेका कृपाशङ्करको अधिकार नहीं था।"

"इसकी जीविका कैसे चलती है ?"

"आजकी बातोंसे मालूम हुआ कि इसकी जीविकाका साधन भी इसका यही विधवा-आश्रम है। आश्रममें आई हुई विधवाओंका जिनके साथ विवाह कराता है उनसे कुछ दक्षिणा पा जाता है।"

"उन बच्चोंके बारेमें भी आपने कुछ पूछा ?"

वासुदेवने कहा—"उनकी मां भी अपने नए पतिके साथ आज ही कलमें आनेवाली है। वह इन बच्चोंको ले जायगी।"

"इन्हें छोड़ क्यों गई थी ?"

"पहले सोचा होगा कि शायद नए घरमें जानेपर वह इन बच्चोंकी याद भूल जाय। पर आखिर माता ही तो है। नहीं भुला सकी।"

"कितना जालिम है ! स्त्रीको पतिसे, मांको बच्चोंसे अलग करके यह अपना रोजगार चलाता है और समाज सुधारक भी बना है !" देवकी कुछ उत्तेजित हो उठी। उसने कहना शुरू किया—"वह स्त्री जो इन्हें छोड़कर चली गई है, इन्हें चाह नहीं सकती। कृपाशङ्करसे कहो, वह इन बच्चोंको हमें दे दे। हम इन्हें प्रेमसे रक्खेंगे। हमारा जी भी बहलेगा।"

"यह हो सकता है। पर अभी इनका बाप भी तो मौजूद है। कानून से उसीका इन पर अधिकार है।"

"तो उनके बापको ही खबर करो।"

"जल्दी न करो। कुछ न कुछ तो हम करेंगे ही।"

उस दिनसे वे बच्चे वासुदेवके घरमें भी आने लगे और कृपाशङ्करके चंगुलसे उनके उद्धारके उपाय सोचे जाने लगे। एक दिन कृपाशङ्करने वासुदेवको बताया कि उन बच्चोंकी मां न आवेगी। उसके नए पतिने उसे समझा बुझा लिया है। तब पत्नीके कहनेसे वासुदेवने कृपाशङ्करसे लड़कोंके पिताके नाम एक रजिस्टर्ड पत्र लिखवाया।

× × × ×

एक दिन जब कृपाशङ्कर कहीं चला गया था, दोनों बच्चे देवकीके कमरेमें आकर चाभीकी मोटर और बोलती चिड़ियासे खेल रहे थे। देवकीने देखा कि उसके घरमें एकाएक एक अपरिचित स्त्री घुस आई है और दोनों बच्चोंको बारी-बारीसे चूमकर और अपनी छातीसे लगाकर कह रही है—"हाय ! मेरे लाल ! हाय मेरे राम लछमन !!"

देवकीने उसे डांट कर पूछा—"तू कौन है रे !"

उस स्त्रीने देवकी ओर आंख फाड़कर देखा और कहा—"मैं इनकी मां हूँ ! मैं इनको छोड़कर जिन्दा नहीं रह सकती। तुम कौन हो ? तुम्हारे पास ये बच्चे कैसे आए ?"

देवकीने बच्चोंकी मुसीबतकी सारी कहानी कह दी। वह स्त्री आंखोंमें जल भर कर बोली—"कृपाशङ्करने मेरे ऊपर जादू कर दिया था। नाम कृपाशङ्कर है, पर है यह पूरा पिशाच। इसने मुझे बच्चोंके साथ मेरे पतिसे अलग किया। फिर मुझे एक पंजाबीके हाथ बेचा। अदालतमें मजिस्ट्रेटके सामने इसने मुझसे कहलाया कि मैं विधवा हूँ, जिन्दगीका कोई

वसीला नहीं है, बाल-बच्चे भी नहीं हैं, मैं अपनी शादी अपनी इच्छासे पंजाबीसे करनेके लिए तैय्यार हूँ। जो इसने कहलाया वह मैंने कहा। होश रहते कोई स्त्री इस तरह नहीं कह सकती पर इसने मुझे न जाने क्या खिला दिया था। इस तरह मैं पंजाबी के हाथ डाली गयी। वह पंजाबी जानता था कि मेरे दो बच्चे हैं, पर उसे उन बच्चोंकी जरूरत नहीं थी। उसे स्त्रीकी चाह थी। वह सिर्फ मुझे चाहता था। उसने बच्चोंके साथ मुझे स्वीकार करनेसे इनकार किया। वह तो मेरा शरीर चाहता था, मेरा मांस चाहता था। मेरे भीतर जो दिल है उसको वह नहीं चाहता था। जैसे कसाई गाय खरीदता है। वैसे ही उसने मुझे खरीदा। पर मैं जबान रखते भी न बोल सकी। मैं बिक गई। उसके घर पहुँचने पर मुझे जान पड़ा कि बच्चोंके बगैर मैं पागल हो जाऊँगी। न मुझे नींद पड़े और न भूख लगे। मैंने पंजाबीसे कह दिया कि मैं बच्चोंके बगैर न रह सकूंगी। उसने बच्चोंको बुलवानेका वादा किया, पर बुलवाया नहीं। एक दिन मौका पाकर मैं उसके घरसे भाग निकली। जैसे एक सूखी पत्ती आंधीमें उड़ी-उड़ी फिरती है, वैसे ही गिरती-पड़ती मैं यहां आ गई हूँ। तुम बड़ी उदार हो। साक्षात् लक्ष्मी जान पड़ती हो। मुझे यहीं अपने घरमें पड़ी रहने दो। मेहनत मजदूरी करके अपना पेट पाल लूंगी।"

इसी समय बाहर गलीमें, और देवकीके घरके अन्दर, कृपाशंकरकी आवाज गूंज उठी—राधेश्याम!

उस समय छोटा बच्चा मांकी बांहोंमें आबद्ध था और बड़ा उसकी पालथीमें बैठा था। दोनों मांका स्नेह पाकर बसन्त ऋतुके पौधोंके समान

प्रफुल्लित हो रहे थे। कृपाशंकरके इस कर्कश स्वरसे जैसे उनपर तुषार पड़ गया। वे सहम गये और उठकर जाने लगे।

मांने उन्हें और भी मजबूतीसे पकड़ लिया और रुदनके स्वरमें कहा —"मेरे लाल! अब तुमको न छोड़ूंगी। तुम मुझको छोड़कर कहीं मत जाओ।"

कृपाशंकरका स्वर क्रमशः उच्च और कर्कश होता गया, पर आज बच्चे उन बांहोंमें आबद्ध थे जो साबूत रहते उन्हें छोड़ नहीं सकती थीं। वे जहांके-तहां सिकुड़े, सहमे बैठे रहे।

(५)

इस घटनाके दो दिन बाद उन लड़कोंका बाप आया। सर्वप्रथम देवकीने ही उसे अपनी खिड़कीसे देखा। वह दुबला-पतला और अत्यन्त रोगी प्रतीत हो रहा था। क्षीण स्वरमें उसने नाम लेकर कृपाशंकरको पुकारा। उस समय कृपाशंकर कहीं बाहर गया था। दोनों बच्चे अपनी मांके साथ देवकीके घरमें बैठे थे। बच्चोंकी मां भी उस खिड़कीके पास आई जहां देवकी खड़ी थी। उसने अपने पतिको पहचाना।

"हाय! इनकी यह दशा हो रही है।" उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया। उस स्त्रीके सिर्फ इसी वाक्यसे देवकी ताड़ गयी कि वह उसका पति है। उसने बड़े लड़केसे कहा—"देख, तेरा बाप बाहर खड़ा है।"

बड़ा लड़का तुरन्त बाहर गया। बापने उसको उठाकर छातीसे लगा लिया और हांफ उठा—कुछ इस कार्यमें जो परिश्रम पड़ा उसके कारण और कुछ अकस्मात अपने बच्चेको पा जानेके कारण। इसी बीचमें छोटा बच्चा भी बाहर निकला। बापने लपककर उसको भी गोदमें

उठा लिया। पर वह रोने लगा। बापके पास उसको रहनेका मौका कम मिला था और इधर इतना समय व्यतीत होनेके कारण उसे भूल गया था। बापने उसे धीरेसे जमीनपर रख दिया और बड़े लड़केसे पूछा—"कृपाशंकर कहां हैं ?"

"मैं नहीं जानता। मैं अब उनके घरमें नहीं रहता। अम्मा आ गयी हैं। उन्होंने कृपाशंकरको........"

लड़केकी बात खतम भी न होने पाई थी कि बापने पूछा—"क्या कहा ? अम्मा आ गई हैं। कौन अम्मा ?"

"मेरी अम्मा ! छोटे भैय्याकी अम्मा ! कृपाशंकरने उनके ऊपर जादू कर दिया था। अब वह जादू उतर गया।"

"हूँ !" वह आदमी अपना सिर पकड़ कर वहीं जमीनपर बैठ गया। उसके सामने उसके जीवनकी गत स्मृतियां स्पष्ट हो उठीं। किस प्रकार मां बापके मरनेपर उसने किसानीका कर्जसे लदा बोझ अपने सिरपर उठाया, किस प्रकार उसके खेत उसके हाथसे निकल गये, किस प्रकार उसकी स्त्रीने उसकी बीमारीमें मेहनत मजदूरी करके उसका और अपना पेट भरा और अन्तमें किस प्रकार उसने अपने ढहते हुए घरमें एक दिन अपने आपको अकेले पाया—इन सब बातोंको सोचकर वह अत्यन्त दुःखी हो रहा था।

देवकीने बड़े लड़केको भीतर बुलाकर उसके बापके बैठनेके लिए एक चारपाई भिजवा दी और उसके जलपानके लिये थोड़ी सी मिठाई भेजी। इससे उसके शरीरमें कुछ ताजगी आ गई और उसने बड़े लड़केसे कहा—"जरा अपनी अम्माको तो यहां बुला।"

तुरन्त ही लड़केके साथ उसकी स्त्री बाहर निकली और पतिके पैरोंमें लिपटकर रोने लगी। उस रुग्ण और निर्जीव शरीरमें भी अभी कुछ अभिमान शेष था। उसने तिरस्कारके साथ अपना पैर पीछे खींचते हुए कहा—"अन्ती ! अब तू दूसरेकी है। मुझे मत छू। कसूर मेरा ही है। मैं तुझे कमाकर खिला नहीं सकता था। मेरे साथ तू भूख कब तक झेलती ? तूने जो कुछ किया अच्छा किया। अब मैं तुझसे एक बात पूछता हूँ। तू बच्चोंका जरा भी प्यार करती है ? अगर तेरे दिलमें बच्चोंका जरा भी प्यार हो तो उन्हें संभाल ले। मैं खुद ही भूखों मर रहा हूँ। इनको क्या खिलाऊंगा ? जब बड़े हो जायंगे कमा खा लेंगे।"

अन्ती सिर नीचा किए फफक-फफक कर रो रही थी। वह अपने पतिको छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहती थी। अधिक मजदूरीके लालचमें वह कृपाशंकरकी मण्डलीके हाथ पड़ गई थी और उसकी यह दशा हुई। उसने कहा—"मेरे स्वामी, तुम मुझे चाहे पापी जानकर मत छुओ पर मुझे गैरजातिकी भांति भी अगर अपने घरमें पड़ा रहने दो तो मैं तुम्हारे बच्चोंको पाल पोसकर बड़ा बना दूंगी। जब बच्चे कमाने खाने लायक हो जायं, मुझे निकाल देना।"

ठेलोंके पहियोंकी गड़गड़ाहटने इसका ध्यान गलीके एक सिरेकी ओर आकृष्ट किया। कृपाशंकर तीन चार ठेले लिये चला आ रहा था। उसके द्वारके पास वे ठेले आकर रुक गये और उसका असबाब उनपर लदने लगा। उसी समय वासुदेव बाजारसे आवश्यक चीजें लेकर आये। उन्हें देखकर कृपाशंकरने कहा—"मुझसे जो भूल चूक हुई हो माफ कीजिएगा। अब मैं इस मुहल्लेको छोड़कर अन्यत्र जा रहा हूँ। इस

मुहल्लेके लोग बड़े जाहिल हैं। वे समाज सुधारकी बातें नहीं समझते। इनके बीचमें बसनेसे सिवाय बदनामीके और कुछ नहीं है।"

वासुदेवको उससे इधर अरुचि-सी हो गयी थी। उन्होंने मुस्करा कर सिर हिलाते हुए उसको अन्तिम बार नमस्कार किया और तेजीसे अपने घरके भीतर घुस गये।

देवकीने अपने पति और उस दुःखी किसानको एकसाथ बैठाकर आदरसे भोजन कराया और प्रस्ताव किया कि वह बच्चोंको उसके पास छोड़ दे और अपनी स्त्रीका कसूर माफकर उसे अपने साथ ले जाय। किसान तो तैयार हो गया पर वह स्त्री बच्चोंको छोड़नेपर किसी तरह राजी न हुई। वासुदेवने किसानको नये बैलोंकी जोड़ी और बीज खरीदनेके लिये नकद रुपये दिये। साल भर बाद किसानने स्त्रीको राजी कर बड़े लड़केको पढ़नेके लिये वासुदेवके पास भेज दिया।

चरित्र-निर्माण

(१)

शहरसे स्टेशनकी ओर जानेवाली सड़कके किनारे एक लालटेनके धुँधले प्रकाशमें कङ्कड़के ढेरपर मलिन-वसना परन्तु परम सुन्दरी युवती बैठी थी। सेठ रामनाथकी दृष्टि उस ओर पड़ गई। रामनाथ जी वास्तवमें सेठ नहीं थे पर बड़े उदार और दानी थे। इसलिये मित्र लोग उन्हें सेठ रामनाथ कहने लगे थे। वे मंत्र-मुग्धकी भांति उस स्थानपर रुक गये और वह मलिन-वसना नारी भी कुछ चौंकी और डरी। अभी रात अधिक नहीं हुई थी। बाजार खुला था लोग आ जा रहे थे, सब प्रकारकी सवारियोंके पहिये गड़गड़ा रहे थे। उधर किसीका ध्यान नहीं था। सेठ रामनाथजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस चहल-पहलके बीचमें उस स्त्रीकी शांति भङ्ग की थी।

वे उसके और निकट गये और बोले—तुम कौन हो ?

"परदेशी-स्त्री हूँ बाबूजी, तकियोंके गिलाफ बेच रही हूँ।"

"परन्तु मुझे तो एक भी गिलाफ नहीं दिखायी पड़ता।"

स्त्री उठकर खड़ी हुई। उस कंकड़के ढेरपर उसका आसन एक छोटा सा टीनका सन्दूक था। उसने सन्दूकको खोला।

सेठ रामनाथने गिलाफोंकी परीक्षा आरम्भ की। वे गिलाफ महीन कपड़ेके एकसे-एक अच्छे बने थे और उनमें बड़ी सुन्दर जालियां मढ़ी थीं। उन्होंने मालूम किया कि वे आठ आनेसे अढ़ाई रुपये तकके हैं और बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने यह पता भी चला लिया कि ये गिलाफ उसी स्त्रीके बनाए हैं।

उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसाकी और कहा—आजकल देशी कारीगरी नष्ट होती जाती है। यहां कुछ लोग स्वदेशी प्रचार के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। तुम उनसे मिलो तो तुम्हें सदैवके लिये काम मिल जाय। मैं तुम्हें उनसे मिला सकता हूँ। चाहो तो अभी चलो।

स्त्रीने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने गिलाफोंको तहाकर सन्दूकमें रख लिया और सन्दूकको बन्द करके उसके ऊपर फिर पूर्ववत् बैठ गई।

"तुम्हारे बेचनेका तो अजीब ढंग है। जो चीज बेचती हो उसको छिपाकर क्यों रखती हो ?"

"मैं अब बेचती नहीं हूँ। मेरी एक साथिन आ जाय, बस! मैं चल दूं।"

सेठ रामनाथजी आगे बढ़े। मन ही मनमें वे सोचने लगे—यह स्त्री कौन हो सकती है ? रातमें इसका इस प्रकार अकेले बैठनेका अर्थ

क्या हो सकता है ? पर इसके गिलाफ अच्छे हैं। अगर सचमुच इसके बनाये हैं तो इसे प्रोत्साहन मिलना चाहिये। मुझे कमसे-कम एक गिलाफ जरूर खरीदना चाहिये।

वे लौट पड़े। बोले—तुम्हारे पास अधिकसे अधिक ढाई रुपयेका गिलाफ है न ?

"जी हां।"

"एक दे दो।"

स्त्रीने उनकी आज्ञाका पालन किया। रुपया देकर सेठजी फिर चले। अब वे प्रसन्न थे। उन्होंने एक असहाय अबलाकी सहायता की थी, उन्होंने देशी कारीगरीको प्रोत्साहन दिया था और उन्होंने अपने सेठ नामको चरितार्थ किया था।

(२)

सेठ रामनाथजी आदर्शवादी व्यक्ति थे। अपने कर्तव्योंके पालनमें वे हरिश्चन्द्र, राम और भीष्म पितामहसे भी आगे जाना चाहते थे। उन्होंने कभी कोई झूठी बात मुंहसे नहीं निकाली थी और उन्होंने कभी कोई ऐसा वादा न किया था जिसको वे पूरा न कर सके हों।

वे धन कमाकर ऐसा मकान नहीं बनवाना चाहते थे कि उसकी छतपर खड़े हों तो उनके पड़ोसी उन्हें तुच्छ दिखलाई पड़ें। वे राज-नीति या समाजके मैदानमें इतना प्रभावशाली भी नहीं बनना चाहते थे कि उनके मित्रोंको उनके निकट जानेमें लघुताका अनुभव हो। उनके हृदयमें केवल एक इच्छा थी। वह थी अपने चरित्रको आदर्श चरित्र

बनाना। सत्य, प्रेम, दया, धर्म, नियम-संयम आदि गुणोंसे वे अपना हृद-घट लबालब भरना चाहते थे। उनमें ये सब गुण साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक थे, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु उनमें एक भारी अव-गुण भी था।

स्त्री-सौन्दर्यके प्रभावसे वे अपने आपको बचा नहीं सकते थे। वे प्रत्येक स्त्रीकी ओर देखना चाहते थे और प्रत्येक स्त्रीसे शादी करना चाहते थे। वे चाहते थे कि संसारमें उनके सिवाय और कोई पुरुष न रहे। वे चाहते थे कि उनके सिवाय किसी पुरुषके साथ किसी स्त्रीका विवाह न हो। यह उनकी विचित्र इच्छा थी। उनके चरित्रमें यह अजीब कमजोरी थी। यह सच था कि वे वेश्यागामी नहीं थे। यह भी सच था कि उन्होंने किसी स्त्रीको कभी धर्म-भ्रष्ट नहीं किया था। तो भी उनके हृदयमें वासना थी और उससे उन्हें कभी मुक्ति नहीं मिलती थी।

अपनी यह कमजोरी दूर करनेके लिये उन्होंने साधु महात्माओंकी संगत की। धर्मशास्त्र पढ़े, व्रत-उपवास किया, डाक्टरोंकी राय ली और अन्तमें विवाह भी कर लिया, परन्तु सारी बातें ज्योंकी त्यों बनी रहीं।

पर-स्त्री प्रेमकी बात कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नीसे नहीं कहता क्योंकि इससे वैवाहिक जीवनमें कटुता उत्पन्न होनेका भय रहता है। परन्तु रामनाथके सम्बन्धमें यह बात न थी। उन्होंने विवाहके पश्चात ही अपनी स्त्रीसे कहा था—देवी मुझमें सबसे बड़ा दोष यह है कि मैं पराई स्त्रीकी ओर तुरन्त आकर्षित हो जाता हूँ। मैंने विवाह इसलिये किया है कि मेरा यह दोष दूर हो। मैं चाहता हूँ कि अब मैं तुम्हारे सिवा

और किसीकी ओर आकर्षित न होऊँ। तुम मेरे स्त्री-प्रेमका केन्द्र बनो और मेरी वासनाओंके वृत्तको उससे ढक दो।

तबसे वे अपनी इन प्रकारकी कमजोरियोंकी चर्चा अपनी पत्नीसे बराबर किया करते थे। अपने मनके पापको जब वे अपनी स्त्रीसे कह देते थे तब उन्हें जान पड़ता था जैसे वे उस पापसे बरी हो गये हों। अपनी साधारणसे साधारण त्रुटि और कमजोरी अपनी पत्नीके निकट स्वीकार करके वे अपने चरित्रको दृढ़ बना रहे थे।

सड़कके किनारे बैठी उस मलिन-वसना स्त्रीने उन्हें जितना आक-र्षित किया था उतना कदाचित किसी अन्य स्त्रीने नहीं किया था। उससे गिलाफ खरीदकर वे बहुत दूर न जा सके। उन्होंने सोचा उसका कुछ और हाल जान लेनेमें क्या हर्ज है? वह असहाय स्त्री है उसका सुख-दुख मालूम करके उसकी अगर कुछ सहायता कर सकूँ तो क्यों न करूँ। वे फिर उसकी ओर लौटे।

इस बार कंकड़का वह ढेर सूना था। उन्होंने स्टेशनकी ओर बढ़कर देखा। अंधेरेमें कुछ चलता हुआ जान पड़ा। दौड़कर वे वहां पहुँच गये। वही युवती थी। धीरे-धीरे स्टेशनकी ओर जा रही थी। अन्धकार और निर्जनताने रामनाथको अच्छा अवसर दिया। उन्होंने उसके निकट जाकर कहा—अरे! इस निर्जन स्थानमें तुम इस तरह अकेली जा रही हो? और तुम्हारी वह साथिन?

मेरी साथिन मेरी असमर्थता है। आप देखनेकी इच्छा करें तो वह आपको दिखायी पड़ सकती है।

रामनाथने अनुभव किया कि वह सचमुच असमर्थ और असहाय

अबला है। फिर उन्होंने मन ही मन कहा—जब मेरे जैसे विवेकशील चरित्रवान व्यक्ति एक असहाय अबलाका इस प्रकार पीछा कर सकते हैं तब साधारण मनुष्योंका क्या हाल होगा।

उनके जीमें आया कि वे लौट जायँ। फिर उन्होंने सोचा कि रात अंधेरी हैं, स्थान निर्जन है। इसे जहां यह जाना चाहे वहांतक पहुँचा आना चाहिये। शायद कोई बदमाश उसपर हमला कर दे। उन्होंने पूछा—कहां जाओगी ?

"स्टेशन।"

"वहांसे ?"

"रात वहीं बिताऊंगी। कल फिर गिलाफ बेचूंगी। कुछ पैसा इकट्ठा हो जायगा तो देश जाऊंगी।"

"तुम्हारा देश कहां है ?"

"पूछकर क्या कीजियेगा बाबूजी।"

"तुम्हारी सहायता करना चाहता हूँ।"

"कोई पुरुष किसी स्त्रीकी सहायता बिना किसी लालचके नहीं कर सकता। और मेरे पास कुछ नहीं है बाबू जी।"

रामनाथको मनका अवसर मिला, बोले—रूप है, यौवन है तुम जहां रहो वहीं तुम्हारी चांदी है।

स्त्री मौन हो गयी।

रामनाथने उसके और निकट जाकर कहा—चुप क्यों हो गयी हो ?

स्त्रीने विनय भरे स्वरमें कहा—आप समर्थ हैं। आप जो चाहें कह

सकते हैं। आपके मुंहसे सब ठीक निकलेगा। मैं असमर्थ हूँ। मेरे मुंह से कुछ भी निकलना शोभा नहीं दे सकता। मैं क्या जवाब दूं।

रामनाथके जीवनमें यह पहला अवसर था जब कि स्त्रीसे छेड़छाड़ करनेपर उन्हें कोई उल्टी-सीधी बात नहीं सुननी पड़ी थी। वे सोचने लगे कि और स्त्री होती तो चार बात सुनाती। कहती तुम्हारी मूंछें उखड़वा लूंगी, तुमको जूतोंसे पिटवाऊंगी, ऐसी ही बातें सुननेके वे आदी थे। उनके समझमें न आया कि इस स्त्रीने छेड़े जानेपर क्रोधका भाव क्यों नहीं प्रकट किया ?

उनके मस्तिष्कमें "मौनं स्वीकार लक्षणं" वाले तर्ककी बिजली दौड़ गयी। एक बड़े वृक्षके नीचे पहुँचनेपर उसके सघन अन्धकारके आवरणमें उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया। स्त्री कुछ न बोली। पर उसके पैरोंकी गति पूर्ववत बनी रही।

रामनाथ उसके कंधेपर हाथ रखकर चलने लगे। जब आगे स्टेशन की रोशनी दिखायी पड़ी तब उन्होंने कहा—क्यों ? रुकोगी नहीं, बढ़ती ही जाओगी ?

स्त्रीने कहा—बाबू, मेरा बच्चा अकेला पड़ा मेरी राह देख रहा होगा। मैं कैसे रुक सकती हूँ।

"अरे ! तुम्हारे बच्चा भी है।"

"हां बाबू।"

"वह बच्चा तुम्हारी साथिनकी भांति किसी अदृश्य जगतका निवासी तो नहीं है ?"

"तुम जो कहो वही ठीक है, बाबू !"

रामनाथने उसको अपनी बाहोंमें भरकर उसका मुख चुम्बन करनेका प्रयत्न किया।

स्त्रीने कहा—बाबू आपके स्त्री नहीं है क्या ? आप विवाह क्यों नहीं कर लेते ?

"तुम मेरे साथ विवाह करोगी ?"

"मैं अपने बच्चेके साथ विवाह कर चुकी हूँ। मेरा पति, मेरा रक्षक, मेरा सर्वस्व वही है। जबतक वह जीवित है, मुझे और कोई चिन्ता नहीं व्याप सकती।"

पीछेसे एक आदमीके आनेकी आहट सुनाई पड़ी। रामनाथने उस स्त्रीको छोड़ दिया। उस आदमीके चले जानेपर रामनाथने कहा—"तुम्हारी आज्ञा हो तो तुम्हारे कन्धेपर फिर हाथ रख लूँ।"

"बाबू, तुम्हारे जो जीमें आये करो। फकत मेरा रास्ता मत रोको, मेरी चालको मन्द न पड़ने दो। मेरा बच्चा मेरी राह देख रहा होगा।"

रामनाथकी समझमें न आया कि वे क्या कहें और क्या करें ? थोड़ी देर सोचकर वे बोले—"तो मैं वापस लौट जाऊँ ?"

"आपकी बड़ी कृपा होगी।"

अब सामनेकी लालटेन पीछे पड़ गयी थी। उसके प्रकाशमें उन्हें अपनी बढ़ती हुई परछायीं दिखाई पड़ी। उन्होंने अपने विशाल मस्तकको, अपनी बलिष्ठ बाहोंको और अपनी पोशाककी आकृतिको ध्यानसे देखा। उन्हें जान पड़ा जैसे किसी चरित्रवान धर्म-रक्षक और परोपकारी व्यक्तिकी आकृति हो। उन्हें कुछ लज्जा मालूम हुई। वे रुक गये और

वहीं खड़े उस स्त्रीको तबतक देखते रहे जबतक वह आगेके अन्धकारमें विलीन नहीं हो गई।

(३)

सेठ रामनाथको अब स्मरण हुआ कि मैं आदर्श-चरित्रका निर्माण करना चाहता हूँ। उनकी समझमें न आता था कि यह कार्य उन्होंने क्यों कर डाला ? ओह ! यह अपराध साधारण नहीं है। वे सोचने लगे—मैं जब एक साधारण मनुष्य नहीं बन सकता तब राम, हरिश्चन्द्र और भीष्म क्या बनूँगा ?

उन्हें जान पड़ा जैसे उनमें सत्य, प्रेम, दया, न्याय आदि कोई गुण नहीं है। वे जोर-जोरसे कहने लगे—मैंने इस असहाय स्त्रीके साथ कौन सी दया दिखाई ? मैंने इसके साथ कौन सा न्याय किया ? मैंने इसके साथ सत्य और प्रेमका कैसा पालन किया ? मैं नीच हूँ। ओह कितना नीच !

उस समय यदि कोई उधरसे आ निकलता तो उन्हें पागल समझता। अधिक देरतक वहां वे खड़े भी न रह सके। सहसा उनके जीमें आया कि उस स्त्रीसे चलकर क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये। वे स्टेशनकी ओर बढ़े। उस स्त्रीकी खोज करते उन्हें देर न लगी। सिरपर वही सन्दूक रक्खे एक हलवाईकी दूकानपर वह कुछ खाने-पीनेकी चीजें खरीद रही थी। रामनाथ थोड़े फासलेपर खड़े होकर उसको देखने लगे और उससे क्षमा-प्रार्थना करनेके लिये अनुकूल स्थान और अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे।

आवश्यकताकी वस्तुएँ खरीद कर वह मुसाफिरखानेके उस कोनेमें

गई जहां चिथड़ोंमें लिपटा एक छोटासा बच्चा पड़ा था। बच्चेके पास ही एक मिट्टीके बर्तनमें शायद उसके पीनेके लिये पानी रक्खा था। बच्चा टकटकी बांधे उस पथकी ओर देख रहा था जिससे होकर उसकी माता आती थी। मांको देखते ही वह उत्सुकताके साथ उठा और दौड़कर उससे लिपट गया। मांने सन्दूक जमीनपर रखकर बच्चेको गोदमें उठा लिया और बार-बार उसका मुँह चुम्बन कर उसे प्यार किया। रामनाथने देखा कि उसका हृदय मातृ-प्रेमसे लबालब भरा है और उसे किसी बातकी फिक्र नहीं है। मान अपमानकी ओर भी उसका ध्यान नहीं है। उन्हें जान पड़ा जैसे वह केवल अपने बच्चेके लिये जीवित हो और संसारकी शेष सब वस्तुओंकी ओरसे वह मृतक हो। उन्हें यह अनुभव हुआ कि उन्होंने जब उसके कन्धेपर हाथ रक्खा था तब वह जीवित नारी नहीं थी, लाशके समान थी। ओह! वे लाशका आलिंगन कर रहे थे। ओह! वे कितने दर्जेके पतित व्यक्ति हैं।

दिनभरके बाद माता और बच्चेके इस कोमल मिलनमें विघ्न उपस्थित करनेका साहस उन्हें नहीं हुआ। वे अपने घरको लौट गये।

आज वे देरसे घर पहुँचे। सदाकी भांति अपनी पत्नीसे उन्होंने शामका अपना सम्पूर्ण अनुभव सुनाया और अत्यन्त दुःखी होने लगे। सान्त्वना देते हुए उनकी पत्नीने कहा—प्यारे तुम जमींदारके पुत्र हो। तुम्हारा शरीर मुफ्तके धनसे लालित-पालित हुआ है। तुम्हें सुख पहुँचानेके लिये कितने मनुष्योंको क्या-क्या कष्ट झेलने पड़े हैं, इसकी गिनती नहीं है। दूसरोंके परिश्रमपर मौज उड़ाना, काहिली और आनन्द विनोदमें समय व्यतीत करना तुम्हारी बपौती है। तुम्हारे हृदयमें कुछ

अच्छी भावनाएँ अवश्य हैं परन्तु वे उस स्त्रीकी भांति असमर्थ हैं। तुम इस चक्करमें न पड़ो। तुम निश्चिन्त होकर जो कर सकते हो करो। तुम सदाचार छोड़ो, सत्य, प्रेम, दया, धर्मका नाम न लो। जो कर सकते हो करो। चरित्र बनाना दूसरोंका काम होगा। तुम्हारा काम है चरित्र बिगाड़ना। तुम जमींदारके बेटे हो। तुम्हें सब-कुछ करनेकी मैं आज्ञा देती हूँ।

रामनाथ पत्थरके समान खड़े सब चुपचाप सुनते रहे। उनकी पत्नीने फिर कहना आरम्भ किया—और उस स्त्रीको मैं अभी यहां लिवाकर लाती हूँ। जब तुमने उस असहायके कंधेपर हाथ रक्खा है तब तुम्हारा यह कर्तव्य है कि अब दूसरा आदमी उसके कंधेपर हाथ न रक्खे। यदि वह तुम्हारी स्त्री होना स्वीकार करेगी तो मैं बड़ी बहनकी भांति उसे घरमें रक्खूँगी। मैं तुमसे सदा कहती हूं कि असहाय स्त्रियोंको जो भी हो छेड़ो मत और यदि छेड़ो तो उनके जीवनका भार लो अपने जीवनकी भांति उनके जीवनको भी निरुद्देश्य मत बनाओ।

"क्या कहती हो? मेरा जीवन निरुद्देश्य है।"

"हां है। अगर तुम्हारे जीवनका कोई उद्देश्य होता तो तुम इस प्रकार उस असहाय अबलाके पीछे न पड़ते। ओह! बेचारी क्या कहती होगी।"

जब पत्नीने घरसे बाहर जानेके लिये कपड़े पहनना आरम्भ कर दिया तब रामनाथने कहा—तुम कितनी स्त्रियोंको घरमें लाओगी?

"उन तमाम स्त्रियोंको मैं यहां लाऊँगी जो असमर्थ और असहाय होनेके कारण तुमसे अपनी रक्षा न कर सकेंगी।"

"उनकी रक्षा तुम करोगी ?"

"नहीं तुम, तुम उन सबके स्वामी कहलाओगे और मैं उन सबकी सेविका।"

अब वह देवी सचमुच घरके बाहर थी और गाड़ी जोती जा रही थी। रामनाथ किं कर्तव्य विमूढ़से पास ही पड़ी आराम कुर्सीपर बैठ रहे। एक घण्टेके बाद जब पहियोंकी गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी तब वे सोतेसे जगे।

(४)

"संसार क्या कहेगा शीला ? तुमने यह क्या किया ?"

"संसारमें उसी कार्यकी निन्दा होती है जो अन्धकारमें होता है, प्रकाशमें जो होगा उसकी प्रशंसा होगी।"

रामनाथने देखा वह मलिन-वसना युवती अपने बच्चे और एक-एक चिथड़ेके साथ गाड़ीसे उतर रही है। वे भय, चिन्ता और पश्चात्तापसे व्याकुल हो उठे।

"शीला, इसके लिये अलग मकान बनवा दो, इसके भोजन-वस्त्रकी पूरी व्यवस्था कर दो, पर इसको यहां न रक्खो। मुझे अधिक लज्जित मत करो।"

"प्यारे, स्त्रीका कर्तव्य है पतिकी सहायता करना, आदर्श चरित्र-निर्माणमें उसका साथ देना, कर्तव्य-पालनका उसमें बल भरना। मैं वही कर रही हूँ जो मेरा धर्म है।"

उस मलिन-वसना नारीने डूबतेसे बचे हुए व्यक्तिकी भांति आनन्द प्रकट करते हुए कहा—बहन, मैं इस बच्चेके लिये सब-कुछ कर सकती

हूँ। अपना शरीर, यौवन, सब बेंच सकती हूँ। वेश्या बन सकती हूँ। तुम जो कहोगी, करूँगी। किसी तरह मेरा बेड़ा पार लगे।

"हां री पगली, सब लग जायगा। चिन्ता मत कर। और यह बच्चा ?"

बच्चेको गोदमें उठाकर उसने फिर कहना आरम्भ किया—यह बच्चा इस घरका चिराग होगा! इस घरका मालिक होगा। इस घरका सर्वस्व होगा। मेरी गोद सूनी थी, आज वह भर गयी। आजसे यह बच्चा मेरा। और मेरे पतिके साथ यह घर तेरा। तेरे गिलाफोंका मोल मैं नहीं दे सकती हूं। पर जो-कुछ मेरे है सब देकर मैं उन्हें लेना चाहती हूँ। मैं अपना घर, अपना वर, अपना जीवन और प्रेम देकर तेरे उन गिलाफों को खरीदना चाहती हूँ। ला सन्दूक मेरे हवाले कर।

यह कहते हुए शीलाने बच्चेको रामनाथको पकड़ा दिया। रामनाथ को जान पड़ा जैसे उनके निरुद्देश्य जीवनका अन्त हो गया और उन्हें सत्य, प्रेम, न्याय, दया और परोपकारकी एक वास्तविक झलक दिखाई पड़ी।

उद्धार

(१)

चाहे गुण कहिये चाहें अवगुण, पंडित सदायतनका यह स्वभाव था कि वे जिस किसीको भी दुःखमें देखते थे उसकी सहायता करनेके लिये टूट पड़ते थे। उनके बाप पुरोहित थे और वे एक संस्कृत पाठशालामें अध्यापक। पिताके मर जानेसे पुरोहिताईका एक प्रकारसे अन्त हो गया था और पाठशालासे कोई निश्चित तनख्वाह न मिलती थी। सिर्फ सीधा—आटा, दाल-नमक आदि—मिलता था जिसे विद्यार्थी संस्कृत-प्रेमी व्यापारियोंके घरोंसे मांगकर लाते थे। पर इस असमर्थ अवस्थामें भी पंडित सदायतन भूखोंको खिलाने, अभ्यागतोंका स्वागत करनेसे न चूकते थे। वे गरीब मां-बापके बेटे थे, इसलिए किसीने उनका ब्याह भी नहीं किया था। उनका घर ढह गया था और उस जमीनमें

कतिपय कहारोंने अपनी झोपड़ियां खड़ी कर ली थीं। पर इस ओर भी उनका ध्यान न था। वे भाग्यवादी थे और प्रायः कहा करते थे—"मेरे भाग्यमें गृहस्थ जीवन नहीं लिखा है। ब्रह्मचर्य आश्रमसे सीधा सन्यास आश्रममें पहुँच जाऊँगा। इस पाठशालामें मेरा बचपन बीता है, इसीमें मेरी सारी उम्र बीतेगी।"

उनके तनपर मैली धोती और उतने ही मैले जनेऊके सिवाय और कोई वस्त्र या सूत न होता था। सिर घुटाए, मस्तक, छाती और बांहोंपर भस्म लगाये, गलेमें रुद्राक्षकी माला डाले, वे सचमुच सन्यासीसे प्रतीत होते थे। उनके बचपनके कई साथी अच्छी नौकरियोंपर पहुँच गये थे। वे होटलोंमें खाना और अंग्रेजी पोशाक पहनना सीख गये थे। पर सदायतन ज्योंके त्यों बने रहे।

उनके जीवनमें तीन काम थे। गंगा स्नान करना, विद्यार्थियोंको पढ़ाना और दुःखमें पड़े लोगोंकी सहायता करनेके लिये दौड़ना। तीनों काम जीवनमें साथ-साथ चलते थे। पाठशालासे गंगाके किनारे और गंगाके किनारेसे पाठशाला। कभी-कभी इतनी ही दूर आने-जानेमें समय बीत जाता था। उनकी कोई निगरानी करने वाला न था; कोई नियम कायदा न था। वे अपने और अपनी पाठशालाके स्वामी थे। गरीब ब्राह्मण जो अपने बेटोंको अंग्रेजी स्कूलमें पढ़नेके लिये न भेज सकते थे, और घरपर भी पेट भर भोजन न दे सकते थे, उन्हें उनके हवाले कर जाते थे। वे व्याकरणसे आरम्भ करते थे और काव्य, वैद्यक, ज्योतिष, गणित, कर्मकाण्ड सभी कुछ पढ़ाते थे। विद्यार्थियोंकी संख्या कभी बढ़कर सौ तक पहुँच जाती थी और कभी दस-पांच ही रह जाती थी।

वे कहांसे और कैसे सबके भोजन-वस्त्रका प्रबन्धकर लेते थे, यह स्वयं उनके लिये एक आश्चर्य था।

× × × ×

सूर्य ग्रहणका पर्व था। गंगा स्नानके लिये हजारोंकी भीड़ उमड़ी थी। उसीमें सदायतन भी अपने विद्यार्थियोंके साथ, किसीको व्याकरण, किसीको ज्योतिष, किसीको काव्य पढ़ाते चले जा रहे थे। इतनेमें एक विद्यार्थी चिल्ला उठा—"गुरूजी, जरा उधर देखिये।!'

सदायतनने देखा कि कोई आदमी जमीनपर मरा सा पड़ा है, और उसको घेरे बहुतसे लोग खड़े हैं। पाठ बन्द हो गया। वे भीड़को चीरते हुए तेजीसे वहां जा पहुँचे। उनके पीछे उनके विद्यार्थी भी ऐसा दौड़े कि जान पड़ा मानों सबके सब उन्हींके शरीरमें समा गये। सदायतन वैद्यक पढ़ाते ही नहीं थे, उन्हें थोड़ा बहुत उसका व्यवहारिक अनुभव भी था। उन्होंने उस मृतप्राय व्यक्तिका हाथ अपने हाथमें लिया और उसकी नाड़ीपर अंगुली रक्खी।

उन्होंने कहा—थकान ! भूख ! और चिन्ता ! तीनों बातें दूर न की गईं तो यह आदमी जीवित नहीं रह सकता।

उस आदमीने निराशा भरे नेत्रोंसे सदायतनकी ओर देखा और बलपूर्वक धीमे स्वरमें कहा—सच है।

वह ऊंचे कदका एक वृद्ध मनुष्य था। आधेसे अधिक दांत गिर चुके थे। सिरके बाल बढ़ गये थे। दाढ़ीपर भी बहुत दिनोंसे अस्तुरा न लगा था। अवस्था सत्तर वर्षके लगभग थी, पर परिस्थितिने उसे और भी बूढ़ा बना दिया था। किसी समयमें उसने अच्छे दिन देखे

थे। इसलिये भूख और थकानसे भी अधिक वह बोल न सका, पर उसकी आंखोंमें आंसू आ गये।

भीड़मेंसे किसीने कहा—ओफ ! बेचारा मर जाता तब भी अच्छा होता।

बुड्ढा आंख फाड़ फाड़कर चारों तरफ देखने लगा। मानों वह उस व्यक्तिको धन्यवाद देनेके लिये खोज रहा था, जिसने इस प्रकार सहानुभूति भरे शब्दोंमें उसके लिये मौतकी कामना की थी। पर सदायतन बोले—नहीं, बाबा ! तुम मरोगे नहीं। वश चलते मैं तुम्हें मरने नहीं दूंगा।

विद्यार्थियोंको वहीं छोड़कर सदायतन भागे-भागे एक हलवाईकी दूकानपर जाकर खड़े हुए। उनका स्वरूप देखकर हलवाईने जोरसे, पर अपने आपसे, कहा—भिखारियोंके मारे तो नाकोंदम आ गया है। एकसे एक दिमाग वाले लोग कौंसिलोंमें जाते हैं, पर इन लुटेरोंका दमन करनेके लिये कोई कानून नहीं बनवाता।

सदायतनको इतनेपर भी मान-अपमानका ख्याल न हुआ। वे गिड़गिड़ाकर जल्दी-जल्दी बोले—सेठजी, बुड्ढा मुसाफिर भूखसे मर जाना चाहता है। जरा-सा दूध उसके लिये दे दो। मुफ्त न दो तो दाम ले लो। नहीं, मेरे पास एक भी पैसा नहीं है। हां, मेरी रुद्राक्ष की माला रख लो। चार आनेकी है। सिर्फ एक पैसेका दूध चाहिये। पैसा देकर आज ही माला ले लूंगा।

"एक न एक बहाना लेकर रोज ही ऐसे सैकड़ों आते हैं।"

"मैं तो कभी नहीं आया।"

हलवाईने एक और लम्बा लेक्चर शुरू किया। पर सदायतनको इतनी फुर्सत नहीं थी। कढ़ाईमें दूध गरम हो रहा था। दूकानमें कुल्हड़ रक्खे थे। सड़कपर मरते हुए बुड्ढेका उन्हें फिर ध्यान आया। उन्हें जल्दीमें और कुछ न सूझा। शीघ्रताके साथ एक कुल्हड़ उठा, उसमें दूध भरकर, वे चलते बने। "चोर-चोर" कहकर हलवाईने उनका पीछा किया। गुस्सेमें और कुछ नहीं तो कमसे कम वह उनके हाथसे कुल्हड़ छीनकर जमीनपर पटक देना चाहता था। दोनों हाथोंसे कुल्हड़ पकड़े, जी-जानसे दूधकी रक्षा करते, बांहोंसे हलवाईके आक्रमणोंका उत्तर देते, वे बुड्ढेके पास जा पहुँचे।

बुड्ढेकी अवस्था देखकर हलवाईको सचमुच दया आ गई। मांगने-वालोंको उसने कभी अपनी दूकानसे विमुख नहीं किया था। पर इतने भिखारी रोज पहुँचते थे कि वह चिड़चिड़ा और कठोर हो गया था और बिना कुछ कड़ी बात सुनाये किसीको कुछ देता नहीं था। उसका क्रोध पश्चात्तापमें बदल गया। वह जड़वत खड़ा होकर टकटकी बांधकर सब देखने लगा।

विद्यार्थी समझ गये थे कि गुरूजी कहां गये हैं। इसलिये वे पानी लाकर बुड्ढेका मुंह हाथ धुला चुके थे। सदायतनके हाथसे दूध पीकर बुड्ढा बोला—सात दिनसे पेटमें कुछ न पड़ा था। तुमने मुझे सचमुच जिला लिया।

बुड्ढेकी बातका कोई उत्तर न देकर सदायतन हलवाईसे बोले—सेठजी, क्षमा करना! मैं चोर नहीं हूँ। पर वह आपत धर्म था। हमारे धर्म शास्त्रमें लिखा है कि जब किसीके प्राण बचानेका प्रश्न

उपस्थित हो तब ब्राह्मणको धर्म, सदाचार, या शिष्टाचारके नियमका पालन करनेके लिए न रुकना चाहिये। आप अपने दूधका जितना दाम मांगें मैं देनेके लिए तैयार हूँ। उस समय मैं हत-बुद्धि हो गया था। मुझे क्षमा करें।

हलवाईने सिर्फ इतना कहा—मुझे धोखा हुआ। सभी आदमी आप जैसे नहीं होते और आदमी आदमीकी पहचान करना मुश्किल है। पर आइन्दा आप मुझसे अगर कुछ मांगेंगे तो आंख मूंद कर दूंगा।

"धन्य है सेठजी! आप जैसे परोपकारियोंके बलपर ही तो हम ब्राह्मण लोग जीते हैं। मुझे विश्वास था कि मैं आपकी सारी दूकान भी उठा लाऊंगा तो आप मुझे माफ कर देंगे।"

(२)

विद्यार्थी चिल्लाते ही रह गये पर उस दिन सदायतन उनके साथ गंगा स्नानको न गये। वे उस बुड्ढेको लेकर पाठशालामें वापस लौट आये। दो-तीन दिन भोजन मिलनेके बाद बुड्ढा चंगा हो गया। पर वह सदा मौन बना रहता और किसी बातका उत्तर न देता। बहुत पूछ-ताछ करनेके बाद उसने अपना नाम बताया मुहब्बतशाह, पर अपनी जाति और अपने परिवारका पता बतानेके लिये किसी प्रकार राजी न हुआ।

एक दिन विद्यार्थियोंमें चर्चा हुई—यह तो ठीक नहीं है कि हमलोग मांगकर लावें और यह बुड्ढा मजेसे बैठकर यहां खाये। क्या यह अपने लिए कहींसे दो चुटकी आटा भी नहीं मांगकर ला सकता?

सदायतन कहीं गये हुए थे पर मुहब्बतशाह विद्यार्थियोंकी बातें सुन रहे थे।

बोले—क्या कहा ? मांगकर लाते हो ? तुम्हारे मां-बाप नहीं हैं ?

"हमारे मां-बाप वकील बैरिस्टर थोड़े ही हैं। गरीब ब्राह्मण हैं। पूजा करते हैं या किसीकी रसोई बनाते हैं।"

"सदायतनको तनख्वाह कौन देता है ?"

"वे अंग्रेजी स्कूलके मास्टर थोड़े ही हैं। यहां काहेकी तनखाह ? संस्कृत पाठशाला गरीबोंके लिये ही तो है। हमलोग गरीब न होते तो यहां क्यों आते ?"

"सरकारसे कुछ मदद नहीं मिलती ?"

"दो तीन पाठशालाओंको थोड़ी बहुत मिलती होगी, पर यहां तो गुरूजीके लक्षण न्यारे हैं। कहते हैं भीख मांग कर पढ़ो, ब्राह्मणका यही धर्म है।"

मुहब्बतशाह गम्भीर हो उठे। लज्जा और ग्लानिसे उनका मस्तक झुक गया।

"क्या सोचने लगे बाबा ?" लड़कोंने पूछा।

"सोच रहा हूँ कि कहां जाऊँ। क्या करूँ।"

"अभीतक कहां थे और क्या करते थे ?"

मुहब्बतशाहके मुंहसे उत्तर न निकला। कौन जानता था कि अभी कलतक जो सैकड़ों लोगोंका भरण-पोषण करता था, उसे गरीब ब्राह्मणोंके बच्चोंके हाथकी रोटी छीनकर खानेके लिये विवश होना पड़ेगा। उनके सामने वे सब अंग्रेजी स्कूल नाच गये, जिनके लिये उन्होंने हजारोंका दान दिया था, जिनकी उन्होंने इमारतें बनवाई थीं, जिनमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको उन्होंने कपड़े, किताबें और वजीफे दिये थे। उन्होंने एक

दीर्घ-निश्वास छोड़ी। ओह ! यदि उन्हें इस संस्कृत पाठशालाका परिचय कुछ पहले लगा होता ! यदि अब भी इसके लिये वे कुछ कर सकते ! रेगिस्तानमें गिरे हुए पक्षीकी भांति वे व्याकुल हो उठे।

उसी समय सदायतन आये। उन्हें देखते ही मुहब्बतशाहने उनके पैरोंपर अपना सिर रख दिया और बोले—बेटा, अब मुझे बिदा दो। इस प्रकार विद्यार्थियोंके भोजनमें हिस्सा बंटानेसे भूखों मरना अच्छा है।

"भोजन क्या हमारे बापका है, बाबा ? दूसरोंके घरसे ही मांग कर तो हम लाते हैं। उसपर जितना हमारा, उतना ही तुम्हारा भी अधिकार है। कौन जानें कभी तुम्हारे घरसे भी हमने मांगकर खाया हो।"

इस अन्तिम वाक्यसे मुहब्बतशाह और भी त्रस्त हो उठे। बोले—नहीं, नहीं मैंने कभी किसी ब्राह्मणको एक पैसा भी नहीं दिया। जान-बूझकर ब्राह्मणकी शक्लसे मुझे चिढ़ थी। मेरा खयाल था कि हिन्दुस्तान-को ब्राह्मणोंने ही चौपट किया है।

"सो कैसे बाबा ?"

"बताता हूँ। जात-पांतके झगड़े, धर्म-शास्त्र, छुआछूत, शादी-ब्याहके बेहूदे नियम ! ये सब ब्राह्मणोंके ही तो फैलाये जाल हैं। इस जालमें फंसा हुआ हिन्दू-समाज मृत्युकी ओर बढ़ा चला जा रहा है।"

"आप आर्यसमाजी हैं ?"

"मैं कोई धर्म नहीं मानता। मैं किसी देवी-देवतामें विश्वास नहीं करता। मेरा धर्म था प्रेम और त्याग। पर देखता हूँ कि उसीने आज मेरी यह दुर्गति की।"

"प्रेम और त्याग ही तो ब्राह्मणका धर्म है बाबा ! परन्तु......",

"पहले मेरी सुन लो। आज दिल खोलकर कहूँगा। मैं ब्राह्मणोंको स्वार्थी समझता था। पर देखता हूँ कि बेचारोंने अपना कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं किया, अपने लिये कोई पेशा सुरक्षित नहीं रखा। लड़के पढ़ाना, दान लेना, भीख मांगना कोई पेशा है? ओह! मैंने इतनी गरीबीमें किसीको पढ़ते नहीं देखा! हाय! मैंने अंग्रेजी स्कूलोंमें अपनी सारी सम्पत्ति क्यों लगा दी? किसी संस्कृत पाठशालाको कुछ क्यों न दिया?"

एक विद्यार्थीने पूछा—बाबा, तुम कौन जातिके हो?

मुहब्बतशाह आवेशमें थे। उनके मुंहसे निकल गया—मैं तेली हूँ और ब्राह्मणोंसे मैं चिढ़ता था, क्योंकि वे मेरे हाथका पानी नहीं पीते थे। क्यों, तुम लोग मेरे हाथका पानी पी सकते हो?

'नहीं।' एक लड़केने कहा।

'गौरीशंकरने पिया है।' दूसरा बोला।

'माधोने भी तो पिया है।' गौरीशंकरने घबड़ा कर कहा।

'और पिया किसने नहीं?' माधो बोला—'उसी घड़ेमें से हम सब पानी लेते हैं और उसीमें से ये बाबा मुहब्बतशाह भी पानी लेते हैं। इन्होंने सबको भ्रष्ट कर दिया।'

सब लड़के क्रोध और घृणासे दांत पीसने लगे।

मुहब्बतशाहका पुराना ब्राह्मण-द्वेष वापस आ गया। बोले—इसी-लिये आज संसार ब्राह्मणोंसे नफरत करता है। मैंने भूल नहीं की थी। अगर तुम लोगोंको मालूम होता कि मैं तेली हूँ तो तुम मुझे छूते भी नहीं। मैं मर जाता। मुझे तड़प-तड़प कर मर जानेमें उतना दुःख न होता जितना तुम ब्राह्मणोंका खाना खाकर जीनेमें आज हो रहा है।

सदायतनने कहा—बाबा! क्रोध न करो। ये लड़के अभी समझते नहीं हैं। वह आपत-धर्म था। आपत-धर्ममें ब्राह्मण सब कुछ कर सकता है। जबतक तुम यहां रहोगे हम सब आपत-धर्मका पालन करेंगे। तुम्हारा छुआ खायेंगे, पियेंगे और तुम्हारी सेवा करेंगे।

"ओह सदायतन! तुम कितने समझदार हो। परन्तु यदि सब ब्राह्मण इसी तरह समझें—यदि तुम मेरे पुत्र होते! यदि मेरा बेटा तुम्हारे जैसा होता!"

मुहब्बतशाहके मुंहसे यह बात निकल तो गयी, परन्तु जान पड़ा जैसे उन्हें यह सब बतानेके लिये दुःख हुआ। वे कहने लगे—"नहीं, नहीं, मेरे कोई लड़का नहीं है। अगर कोई है तो वह तेली नहीं है। पंडित है। तेली केवल मैं हूँ।"

"तेलीका लड़का पंडित कैसे?" एक विद्यार्थीने पूछा।

"वह कर्मसे जातिमें विश्वास करता है। बहुत पढ़ा है, इसलिये अपनेको पंडित कहता है। पंडितकी लड़कीसे उसने व्याह किया है। मेरी उसकी यही लड़ाई है। वह चाहता है मैं अपनी जाति बदल लूं, जातिगत अपमान न सहूँ। पर मुझसे यह हो न सका।"

इसके बाद मुहब्बतशाहने अपनी सारी कथा कह सुनाई। किस प्रकार व्यापारके द्वारा उन्होंने लाखोंकी सम्पत्ति पैदा की और किस प्रकार पुत्र-प्रेममें आकर उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति अपने पुत्रके आराममें व्यय कर दी और जो शेष रहा वह उसीको सौंप दिया।

"तुम्हारा पुत्र कहां रहता है?" सदायतनने पूछा।

"दिल्लीमें बैरिस्टर है, विलायतसे पास करके आया है। पर उसे

मेरी परवाह नहीं। यहांतक कि मुझे अपना बाप कहते उसको शर्म लगती है। और सच भी है। मैंने अपनी उन्नतिका ध्यान नहीं रखा। मैं यह नहीं जानता था कि जीवनकी दौड़में पिताको पुत्रसे हमेशा आगे रहना चाहिये। जो पिता पुत्रसे आगे नहीं बढ़ सकेंगे उन्हें मेरी भांति तिरस्कृत तो होना ही पड़ेगा।"

"मैं तुम्हारे पुत्रसे मिलूंगा और प्रार्थना करूंगा कि वे तुम्हारी सहायता करें, तुम्हारा आदर करें।"

"नहीं सदायतन। मेरी सहायतासे उसे इन्कार नहीं है। पर वह सर्वसाधारणके बीच मुझे पिता नहीं स्वीकार करता। यहांतक कि मेरी जो पतोहू है वह भी नहीं जानती कि मैं कौन हूँ। यह व्यवहार मेरे लिये असह्य है। इसलिये चुपचाप घरसे निकल पड़ा।"

"और सब सम्पत्ति उसी पुत्रको दे दी!"

"धीरे धीरे! पहले उसकी पढ़ाईमें। फिर उसे विलायत भेज कर बैरिस्टर बनानेमें। फिर उसको बंगला, मोटर और बैरिस्टरीका सब सामान जुटानेमें। फिर उसकी शादीमें। मेरी तेलहन और कपड़ोंकी दूकान यह भारी व्यय न संभाल सकी। कर्ज-पर-कर्ज बढ़ता गया। फिर मैं शिक्षा-प्रचारका प्रेमी भी था। मैंने कई स्कूल भी खुलवाये। यहां बनारसमें अंग्रेजी स्कूलोंके बच्चे-बच्चे मुहब्बतशाहके नामसे वाकिफ हैं। पर शायद मुझे कोई अब पहचान नहीं सकेगा और वहां दिल्लीमें शायद किसीने मेरा नाम भी न सुना हो। जिन अंग्रेजी स्कूलोंके जलसोंमें मैं आदरके साथ निमंत्रित होता था, उनकी तरफ जाऊँ तो शायद कोई बात भी न करे। और मैं जाना भी नहीं चाहता। तुमने मुझे नाहक

जिलाया। अरे कहांसे कहां पहुँचा? कहनेका मतलब यह कि मैंने दान भी खूब किया। कर्ज ले लेकर दान किया और बेटेके शौक पूरे किये। परिणाम हुआ दिवाला। मुझे दिवालिया बनना पड़ा। घर बिक गया। मित्रोंने आंखें फेर लीं। बहुत दिनोंतक दिल्लीमें रहा। पर पुत्रका व्यवहार बता चुका हूँ। उसे फिर और धनकी जरूरत पड़ती थी। मैं दे नहीं सकता था। देना तो दूर, मैं उसीका आश्रित हो गया। और उसने मेरा घोर तिरस्कार किया। जब असह्य हो गया तब घरसे चल पड़ा। बनारस में आया। यहां मेरे सैकड़ों मित्र हैं, सैकड़ों प्रेमी। पर दुर्दिनमें मैंने किसीके सामने हाथ फैलाना उचित न समझा। तुम पूछ सकते हो, यहां आया ही क्यों? पुराना प्रेम, और क्या कहूँ? अन्तमें वह दिन भी देखा जब तुम मुझे यहां ले आये। जिसकी मैंने कभी सहायता नहीं की, जिससे कभी प्रेमसे बोला नहीं, वह मेरी सहायता करे! मेरे लिये इतना चिन्तित हो! जितना ही यह सोचता हूँ, उतनी ही पीड़ा होती है। मैं अपने ही अन्दरकी पश्चात्तापकी आगमें जला जा रहा हूँ।"

मुहब्बतशाह रोने लगे। सदायतन और उनके विद्यार्थी स्तब्ध भावसे उनकी ओर देख रहे थे। किसीने कुछ पूछनेका साहस न किया, किसीसे कुछ बोला न गया।

(३)

सदायतनके सामने सिर्फ एक प्रश्न था। वे दिल्ली किस प्रकार जांय और मुहब्बतशाहके बैरिस्टर पुत्रसे शास्त्रार्थ करें। रेलका किराया उन्हें एक भयानक दुर्गम-घाटी-सा प्रतीत हुआ। अन्तमें उन्होंने बिना टिकट जानेका निश्चय किया। अपने निश्चयको उन्होंने अपने विद्यार्थियों और

मुहब्बतशाहसे छिपाकर रक्खा, परन्तु मन ही मन तर्क-वितर्क करने लगे—"क्या यह रेलवे कम्पनीके साथ बेईमानी नहीं है ? क्या शास्त्रमें इस प्रकार यात्रा करनेकी आज्ञा है ? सम्भव है, हो। जरूर होगी। अगर हिन्दू राज्य होता तो त्यागी ब्राह्मणोंसे किराया कौन मांग सकता था ? परन्तु अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी कानून है। पर जिसके पास न हो वह दे कहां से ? फिर मैं तो पर हितके लिए जाना चाहता हूँ। यह आपत-धर्म है। आपत-धर्ममें बेईमानी और ईमानदारी दोनों एक हो जाती है। साधुका वेष बनाकर रेलके कर्मचारियोंसे बचते-छिपते, लड़ते-झगड़ते वे दिल्ली पहुँचे और मुहब्बतशाह तेलीके बैरिस्टर पुत्र पंडित ज्ञानचन्द्र शर्मा के बँगलेमें दाखिल हुए।

उस समय ज्ञानचन्द्रजी अपने मित्रोंको पार्टी दे रहे थे। सुरुचिपूर्ण ढंगसे सजाए गए एक बड़े कमरेमें एक लम्बी मेजके चारों ओर खाने-वाले बैठे गप-शप कर रहे थे। उनमें स्त्रियां और पुरुष सभी थे। इधर जैसे ही भोजन आरम्भ हुआ वैसे ही भस्म लगाए, रुद्राक्षकी माला लट-काए, सिर्फ धोती पहने, नंगे बदन पंडित सदायतनने उस कमरेमे प्रवेश किया। उन्हें देखते ही ज्ञानचन्द्र शर्मा क्रोधसे लाल हो गये और अपने नौकरोंको डाटकर बोले—इस असभ्य ब्राह्मणको किसने यहां आने दिया ?

भयसे नौकर कांप उठे। एक बोला—··हुजू··हुजू हुजूऊऊ ऊ र ! इसे बहुत समझाया, किसी तरह नहीं माना।

मिसेज ज्ञानचन्द्र शर्माने सदायतनकी ओर मुंह करके पूछा—क्या चाहते हो ?

ज्ञानचन्द्रने बात काटकर कहा—इस असभ्य जानवरको यहांसे बाहर

निकालो। बेवकूफ समझता नहीं कि यहां भले घरकी स्त्रियां हैं। नंगे-बदन बैल-सा घुसता चला आ रहा है।

श्रीमती शर्मा बोलीं—प्यारे ! तुम्हारी कैसी आदत है ? यह हिन्दो-स्तान है। यहांके लोग अंग्रेजी शिष्टाचारसे वाकिफ नहीं हैं। इस ब्राह्मण का उद्देश्य हमारा अपमान करना नहीं है।

ज्ञानचन्द्र शर्मा कड़ककर बोले—यह ब्राह्मण है ? ऐसे ही ब्राह्मणोंने ब्राह्मण जातिको कलंकित कर रक्खा है।

फिर वे सदायतनसे बोले—चल, बाहर बैठ ! अभी तुझसे बातें करूँगा।

सदायतनने कहा—ब्राह्मण और सब कुछ सह सकता है, पर अपमान नहीं। तेलीके बच्चे ! नीच ! तेली ! तेली ! तेली ! तू तेली है ! तेली ! तेली !

सब लोग सदायतनका मुंह ताकने लगे। यह आदमी पागल तो नहीं है ?

श्रीमती शर्माने कहा—पंडितजी ! पालागन, आइए बैठिए।

नौकर एक कुर्सी और लाए। "जय हो" कह कर सदायतन उसपर बैठ गये। ज्ञानचन्द्र शर्माने कहा—अपने ही घरमें मैं अपना इस प्रकार अपमान नहीं सह सकता।

इस पर सदायतन बोले—मगर अपने घरमें दूसरोंका अपमान कर सकते हो ? क्यों ? मैं तुम्हारा बाप नहीं हूँ कि जो कहोगे सब सह लूँगा।

"बेवकूफ ! क्या बकता है ? खामोश !" ज्ञानचन्द्र कुछ चिन्तित हुए। "जिस बापकी कमाई पर मौज उड़ाते हो, मित्रोंको दावतें देते हो,

इस प्रकार ठाट-बाटसे रहते हो, उसका इतना तिरस्कार क्यों करते हो ? बस मैं यही पूछने आया हूँ। मुझे उत्तर दो चला जाऊँगा।"

"यह आदमी सचमुच पागल है।" ज्ञानचन्द्र गुस्सेसे उबल उठे और सदायतनको मारने चले। श्रीमती शर्माने बीचमें खड़ी होकर कहा—"प्यारे! तुम्हारा मेरे साथ जो व्यवहार रहा है उसको देखते हुए मैं कह सकती हूँ कि इस आदमीकी बातमें कुछ न कुछ सचाई जरूर है।"

आगन्तुकोंसे मुसकराते हुए मिसैज शर्माने कहा—इस अप्रिय घटना के लिए हममेंसे कोई तैयार न था। पर इसका सुन्दरताके साथ अन्त होना चाहिए। आप लोग खाना-पीना जारी रक्खें। मैं ब्राह्मण देवतासे बातें करके अभी आती हूँ।

वे समझदार सभ्य महिला थीं। सदायतनको अपने साथ लेकर बाहर चली गईं।

ज्ञानचन्द्र शर्माने कहा—हिन्दुस्तानकी स्त्रियां चाहे जितना पढ़ जांय वे सभ्यता नहीं सीख सकतीं। यहां पढ़ी लिखी स्त्रियोंसे ब्याह करना खतरेका काम है। कोई भी अंग्रेज स्त्री इस अवसर पर ऐसा व्यवहार न करती। मैं तो विलायत हो आया हूँ, सब जानता हूँ।

उपस्थित स्त्रियोंमेंसे एक बोली—आपका कटाक्ष हम सब पर भी तो नहीं है ?

सब लोग हँस पड़े। ज्ञानचन्द्रने कोई उत्तर नहीं दिया। वे अपने चित्तको शान्त करनेमें लगे हुए थे।

सदायतनने रो-रो कर मुहब्बतशाहकी दुःख कथा मिसेज शर्माको सुनाई और अन्तमें जोरसे बोले—ब्राह्मणको धनका मोह नहीं होता।

यह अन्तिम वाक्य सबने स्पष्ट सुना। ज्ञानचन्द्र बोले—फिर वही बात! यह आदमी अवश्य पागल है।

सदायतनको बाहर ही ठहरा कर मिसैज शर्मा वापस लौट आईं और बोलीं—यहां कोई गैर नहीं है, सब अपने मित्र हैं। इसलिए कहने में कोई हर्ज नहीं है। मिस्टर शर्माके गुणोंपर मुग्ध होकर ही मैंने इनके साथ व्याह किया था। व्याहके समय यह प्रश्न मेरे पिताने जरूर उठाया था कि मिस्टर शर्माकी जाति क्या है, हमसे ऊँची या नीची। पर मैं जात-पातमें विश्वास नहीं करती और मैंने पिताजीसे स्पष्ट कह दिया था कि यह मेरे लिए मुख्य प्रश्न नहीं है। मुझे दुःख है कि मिस्टर शर्माने मेरा स्वभाव जानते हुए भी मुझसे अपनी जाति छिपाई। इतना ही नहीं, मेरे ससुरका मुझसे परिचय भी नहीं कराया। वे यहां रहे और मैंने उन्हें न पहिचाना। वे पोशाकमें व्यवहारमें शक्ल सूरतमें अप-टू-डेट जैन्टिलमैन भले ही न हों, पर प्रेममें, सदाचारमें, कर्तव्य-पालनमें वे एक ऐसे पुरुष हैं जिनका कमसे कम मैं गर्व करती हूँ। मैं आप लोगोंसे गर्वके साथ यह कहती हूँ कि बनारसके मुहब्बतशाह तेली जो हालमें दिवालिया हो गये है पर जो इसके पहले वहांके बड़े नामी और धनीमानी दूकानदारोंमें थे, मेरे ससुर हैं। और उन्हीं की मुहब्बत और सम्पत्तिका बल पाकर मिस्टर शर्माने मेरे हृदय पर विजय पाई है। पिताके प्रति पुत्रके इस स्वार्थी बर्तावसे मैं दुखी हूँ और मै आज ही बनारस जाती हूँ। ससुरसे क्षमा मांगे और उन्हें सब प्रकारसे सुख पहुँचाए बगैर मुझे चैन नहीं।

ज्ञानचन्द्रने अपना सिर नीचाकर लिया और आगन्तुकोंने एक-एक करके मिसैज शर्मासे बिदा ली।

वह गांव की लड़की

(१)

चौधरी गोपीनाथ हाईकोर्टके जज रह चुके थे और अपने विद्वत्ता-पूर्ण फैसलोंके लिए बहुत मशहूर थे। उन्होंने कभी कोई काम ऐसा न किया था जो बुद्धि और तर्ककी कसौटी पर खरा न उतरे तथापि और तो और, स्वयं उनके घरवाले ही उन्हें सनकी कहा करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वे बहुतसे काम, जिनमें उनके घरवालोंकी राय नहीं होती थी, उनकी नजर बचाकर किया करते थे।

इधर कई महीनोंसे वे अस्वस्थ थे। ७० वर्षका शरीर स्वस्थ रह भी कैसे सकता है। जब सब उपाय व्यर्थ गये और मृत्यु बहुत करीब जान पड़ी तब डाक्टरोंने उन्हें आबहवा बदलनेकी सलाह दी। किसीने काश्मीर किसीने दार्जिलिङ्ग, किसीने विलायत और किसीने स्वीजरलैंड जानेके

लिए कहा। परन्तु चौधरी साहबको कोई सलाह पसन्द न आई। ये सब जगहें वे कई बार देख आये थे। यह जरूर था कि उनके सामने व्ययका सवाल न था। घरमें दौलत भरी पड़ी थी। पर इतनी दूर जानेमें यात्रा की थकान भुगतनेके लिए वे तैयार न थे। फिर उनके दिलसे यह विश्वास भी उठ चला था कि इन जगहोंमें जानेसे इन्सानका स्वास्थ्य सुधरता है। अपनी युवा अवस्थामें वे इन जगहोंमें आये हुए बूढ़े भारतीयोंको पछताते और मरते देख चुके थे।

अपनी अन्तिम अवस्थामें विदेश-यात्राके लिए जब वे किसी प्रकार तैयार न हुए तब पत्नीने कहा—"आबहवा बदलनेके लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। मैं चाहती हूँ कि कुछ दिनके लिए हम लोग दूसरे शहरमें या इसी शहरके दूसरे मुहल्लेमें चले चलें।"

"यह हो सकता है।" चौधरी साहबने सिर हिलाया और ऐसा मुंह बनाया कि पत्नीको जान पड़ा जैसे उसकी सलाह उन्हें पसन्द आ गई है।

उस दिन उनकी तबीअत कुछ अच्छी थी। अपने स्वास्थ्यके बारेमें डाक्टरोंसे उन्होंने बहुत देर तक बातें की थीं और अपने नातीको उसकी १८ वीं वर्षगांठके उपलक्ष्में एक नई मोटर खरीद देनेका वादा किया था। अपनी आरामकुर्सीसे उठकर बँगलेके बाहर वे कुछ दूर तक अपनी वृद्धा पत्नीके साथ टहलने भी गये थे। पर रास्तेमें उन्होंने पत्नीसे बहुत कम बातें की थीं और उसके सवालोंका जवाब उस आदमीकी तरहसे दिया था जो सोचता कुछ है और कहता कुछ है। पत्नीने अनुमान किया कि चौधरी साहब आबहवा बदलने जानेके लिए किसी उपयुक्त स्थानका चुनाव करनेमें लगे हैं इसलिए उसने उन्हें बहुत नहीं छेड़ा।

टहलकर वापस आनेपर चौधरी साहबने अपने नौकरको बुलाकर पूछा—"लाइब्रेरीमें कोई है ?"

"हुजूर देखकर आऊँ तो बताऊँ ?"

थोड़ी देरमें नौकरने आकर कहा—"हुजूर छोटे साहब हैं।"

"अच्छा ! वे चले जायँ तब मुझे बताना।"

इस वाक्यके अन्तिम शब्दपर उन्होंने कुछ ऐसा जोर दिया था कि नौकरको यह विश्वास हो गया कि अपने पुत्रके लाइब्रेरीसे निकलनेके बाद वे वहां जाना चाहते हैं। पिछले कई सालोंसे उन्होंने लाइब्रेरीका द्वारतक न देखा था। एकाएक लाइब्रेरीकी याद ! और बीमारीकी हालतमें। जरूर उन्हें कोई नयी सनक सूझी है। नौकर लाइब्रेरीकी ओर चला ताकि ठीक समयपर वह चौधरी साहबको सूचित कर सके।

मगर संयोगकी बात। उस दिन कोई-न-कोई लाइब्रेरीमें पहुँचता ही रहा। इसलिये जब सोनेका समय हुआ तब चौधरी साहबने कहा—"लाइब्रेरीकी चाभी यहां मेरे सिरहाने रख जाना।"

यह कहकर वे सोनेका प्रयत्न करने लगे।

[२]

बहुत प्रयत्न करनेपर भी चौधरी साहबको नींद न आई। परन्तु जब नौकर चाभी रखने आया तब उन्होंने किसी तरह भी यह बात प्रकट न होने दी कि वे जग रहे हैं। नौकरके जाते ही वे बिस्तरसे उठ बैठे और दबे पांवों लाइब्रेरीकी ओर चले। उस समय चौधरी साहबको छोड़कर सारा घर बिस्तरोंपर लेटा हुआ था।

लाइब्रेरीके द्वारपर पहुँचकर उन्होंने चुपचाप किवाड़ खोला और

भीतरसे बन्द करके बिजलीके बल्ब जला दिये। यह उनकी निजी लाइब्रेरी थी। देश-विदेशकी सैकड़ों पुस्तकें जो उन्हें पसन्द आई थीं, उन्होंने खरीद कर इसमें रख दी थीं। वे यह देखकर प्रसन्न हुए कि उनके पुत्रने पुस्तकोंकी संख्यामें परिवर्द्धन किया है और कई एक नई आलमारियां लगा दी हैं। पुरानी आलमारियोंके ऊपर कई एक बस्ते थे जिनमें वे कागजात और याददाश्तें थीं जिनका चौधरी साहबके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। हर बस्तेके ऊपर सन् लिखे हुए थे। काफी सोचने-विचारनेके बाद उन्होंने जिस दिनकी यह घटना है उसके लगभग १६-१७ वर्ष पूर्वके दो बस्ते लिये और चुपचाप सीढ़ीके नीचे उतर आये। आलमारियोंके ऊपरी हिस्सेसे किताबें या बस्ते उतारनेके लिये वे कभी अपने यौवनकालमें भी इन सीढ़ियोंपर न चढ़े थे। परन्तु इन बस्तोंमें उस स्थानका संकेत मिल सकता था जहां वे जाना चाहते थे और यह एक ऐसा काम था जिसे वे सबसे छिपाकर करना चाहते थे। लाइब्रेरीमें चारों ओर उनके यौवनकी छाप थी। इन बस्तोंमें उनके यौवनके दिनोंकी मधुर स्मृतियां छिपी पड़ी थीं। उनके बीचमें पहुँचते ही उन्हें जान पड़ा जैसे वे एक बार फिर युवा हो गये हैं।

एक युवककी भांति उन्होंने मेजके सामने बैठकर बारी-बारीसे दोनों बस्तोंको खोला और उनके बीचसे कई कागजात निकाले। अन्तमें उन्होंने एक कार्डसाइजका फोटो अपनी जेबमें डाल लिया और दोनों बस्तोंको बांध कर, सीढ़ीपर उसी तरह दबे पांवों चढ़कर जहांका तहां रख दिया।

यह एक मां और बच्चीकी तस्वीर थी। इस मांको छोटी अदालतसे आजन्म कैदकी सजा मिली थी पर चौधरी साहबने उसे बिलकुल छोड़

दिया था। छोटी अदालतके जजोंने लिखा था कि औरतका अपराध बहुत बड़ा है। फांसीकी सजा भी उसके लिये काफी नहीं है। पर चूँकि उसकी गोदमें १३ महीनेका बच्चा है। इसलिये उस बच्चेके पालन-पोषण के ख्यालसे इसको आजन्म कैदकी सजा दी जाती है। चौधरी साहबने इस औरतको बेदाग छोड़ दिया था। उन्होंने फोटोको गौरसे देखा। सारा मुकदमा, दोनों तरफके तर्क-वितर्क उनकी निगाहसे नाच गये। उस समय जब कि वे अदालतकी कुर्सीपर बैठे हुए थे, उनके जीमें आया था कि उस अपराधिनी मांकी गोदमें जो बच्चा है उसे वे एक बार चूम लें। परन्तु उन्होंने बड़े संयमसे काम लिया था। वे जब्त किये जहांके तहां बैठे रहे। चाहे उन्होंने उस औरतके विरुद्ध काफी प्रमाण न पाया हो और चाहे उस नन्हीं बालिकाकी मूक चितवन और अ-स्पष्ट वाणीने उनसे इतनी विनय की हो कि वे पसीज गये हों और उस औरतको छोड़ दिया हो। या सम्भव है दोनों बातें हुई हों।

वह एक गांवकी औरत थी। उसका पति बालिकाके जन्मके दो मास बाद मर गया था। यदि उसकी गोदमें पुत्र होता तो वह पतिकी सम्पत्तिकी स्वामिनी होती। परन्तु गोदमें कन्या होनेसे वह अपने पतिकी सम्पत्तिसे वञ्चित कर दी गयी थी। जमींदारने उससे खेत छीनकर दूसरों को दे दिये थे और घरमें जो सम्पत्ति थी उसपर बिरादरीके लोगोंने कब्जा कर लिया था। सिर्फ अपने पतिके मकानसे वह न निकाली जा सकी थी और वह मकान भी पहली ही वर्षामें ढह चला था। यह परिस्थिति थी जिसमें पड़ोसीके लड़केके हाथके चांदीके कड़े उतार कर उसे कत्ल करनेका मामला उसपर चलाया गया था। उसने अपराधको स्वीकार

नहीं किया था पर प्रमाण इतने इकठ्ठा किये गये थे कि उसे आजन्म कैदकी सजा सुनाई गई थी।

चौधरी साहबको उसके वे वाक्य याद आये जब उसने अत्यन्त कातर होकर कहा था—"उस गांवमें मेरे सब दुश्मन हैं। फकत इस लड़कीको छोड़कर! हुजूर इस लड़कीको ले लें। इसे जिलावें और मुझे फांसी दे दें।" मांके इस करुण स्वरके साथ ही चौधरी साहबको बच्चीकी भी दोनों भोली-भोली नन्हीं आंखोंकी याद आयी। उन्हें उस खामोशी का ध्यान आया जो मांके इस बयानके बाद अदालतमें छा गई थी।

उन्होंने फोटोको फिर गौरसे देखा। गांवकी लड़की! जवान विधवा! जीवनका कोई सहारा नहीं। गोदमें परमेश्वरका दिया हुआ मांसका एक छोटासा फूल। तेरी नाव किस तरह किनारे लगेगी।

[३]

एकाएक उन्हें जान पड़ा जैसे बाहर कोई खड़ा है। उन्होंने फोटो चुप-चाप जेबमें रख लिया और आकर किवाड़ खोले। देखा कि पत्नी खड़ी हैं।

"मैं तुम्हारे कमरेमें गई थी। यह देखने कि तुम्हें बुखार तो नहीं है। कमरेमें तुम्हें न पाकर मैं घबड़ा गई। यह तो बुधुआसे मालूम हुआ कि तुम यहां होगे। यहां क्या कर रहे हो?"

"एक ही कमरेमें लेटे-लेटे जी ऊबता था। इसलिये यहां चला आया। डाक्टरोंने स्थान-परिवर्तनकी सलाह तो दी ही है।"

"खूब! यही स्थान-परिवर्तन है!"

"मनुष्यके एक पलँगसे दूसरेपर जानेका बहुत बड़ा अर्थ होता है। मैं तो एक कमरेसे दूसरेमें आया हूँ।"

"ओफ तुम्हें इस उम्रमें भी मजाक सूझता है। चलो सोने चलो।"

चौधरी साहब पत्नीके पीछे चुपचाप अपने सोनेके कमरेमें चले गये और बिस्तरपर चुपचाप लेट रहे।

"लाओ लाइब्रेरीकी चाभी मुझे दो।" पत्नीको डर था कि कहीं वे लाइब्रेरीमें फिर जाकर बुखार न बुला लें।

चौधरी साहबने चाभी पत्नीके हवाले की और इस तरह करवट बदली मानों उन्हें बहुत जोरकी नींद लगी हुई है। बात यह थी कि उनके दिमागमें तरह-तरहके विचार तूफान बनकर उठ रहे थे और वे उनको सुलझानेके लिये एकान्त चाहते थे।

पत्नीके चले जानेपर उन्होंने फिर सोचना शुरू किया—"उस औरतका क्या हुआ होगा। उसकी लड़की तो शायद मर गई होगी। एक गरीब विधवाका जिसका गांव भर दुश्मन हो, एक छोटे बच्चेका पालना आसान नहीं है। गांवमें उसको न खाना ही मिल सकता है और न शायद उसका बीमार पड़नेपर इलाज ही हो सकता है। गांवकी जिन्दगीसे तो शायद उनके लिये जेलखानेकी जिन्दगी बेहतर होती। वक्तपर खाना मिलता और बीमारीकी हालतमें डाक्टर देखता।"

जितना ही वे सोचते गये उतनी ही उनकी उस मां और बेटीके बारेमें ज्यादासे ज्यादा जाननेको इच्छा बढ़ती गई। उन्होंने एक दीर्घ निःश्वांस छोड़ा और कहा—"अगर वे जिन्दा हैं—तो यह भी जाननेकी बात है कि वे कैसे जिन्दा हैं, क्या खाकर जिन्दा हैं, किस आशासे जिन्दा हैं।"

चौधरी साहब अब खाटपर लेटे न रह सके। उठकर बैठ गये। उनकी पत्नीने जाते समय कमरेमें अन्धेरा कर दिया था। उन्होंने उठकर फिर बिजलीका बटन दबाया और बिजलीकी तेज रोशनीमें जेबसे उस फोटोको निकाल कर देखना शुरू किया। चौधरी साहबने सोचा, कितने ही आदमी पहाड़ोंके शिखरपर चढ़ते हैं; सिर्फ यह देखनेके लिये कि वहां क्या है! कितने ही आदमी समुद्रकी तलेटीमें घुसते हैं, सिर्फ यह जाननेके लिये कि वहां क्या है! ज्ञानके पीछे, जानकारी प्राप्त करनेके पीछे कितने ही आदमी सब तरहके जोखिम उठानेके लिये तैयार रहते हैं और प्राणतक दे देते हैं। परन्तु बहुत कम मनुष्य ऐसे हैं जो यह जाननेकी फिक्र करते हैं कि परिस्थितियोंका शिकार होकर स्वयं मनुष्य कहां कितना सुख-दुख पाता है। उस मां और बेटीकी खोज उन्हें अपने लिये उतनी ही महत्वपूर्ण जान पड़ी जितनी कि कोलम्बसके लिये भारत की खोज थी। उन्होंने बिजलीकी रोशनीमें यह निश्चय किया कि वे उस मां और बेटीका पता लगावेंगे। वे उस गांवमें जायँगे जिसमें वह रहती थी—शायद अब भी रहती हो। इस तरह आबहवा भी बदल जायगी और उनकी एक इच्छा भी पूर्ण हो जायगी। उन्होंने यह भी इरादा किया कि यह यात्रा वे अकेले ही करेंगे। किसीको साथ न ले जायँगे।

[४]

दूसरे दिन सबेरे उन्होंने हाईकोर्टकी उस सालकी कार्यवाही मँगाकर देखी। उस गांवका पता लगाया, करीबका रेलवे स्टेशन मालूम किया और स्टेशनसे गांवतकके रास्तेपर गौर किया।

जब चायका वक्त हुआ और उनके परिवारके सब लोग—उनकी पत्नी, उनका लड़का जो अब बैरिस्टर था, उनका नाती जो १० वीं कक्षामें पढ़ रहा था और उनकी पुत्र-वधू और परिवारके अन्य मर्द-औरतें जमा हुईं तब उन्होंने अपनी देहात जानेकी बात कही। इस सिलसिलेमें उन्होंने एक छोटासा भाषण भी दिया जिसका आशय यह था कि हम धनी लोगोंको आबहवा बदलनेके लिये, दिल बहलानेके लिये या छुट्टी मनानेके लिये देहातमें जाना चाहिये। इससे हम अपने देशके लोगोंका परिचय प्राप्त करेंगे, उनकी जरूरतोंको समझेंगे और उन्हें भी इस बातका मौका देंगे कि वे हमें समझें। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि हमारा धन हमारे देशमें ही रह जायगा और हम देशकी वह सेवा करेंगे जो अबतक नहीं कर सके थे।

चौधरी साहब अपनी बात पूरी भी न कर पाये थे कि उनका नाती चिल्ला उठा—"दादा मैं भी आपके साथ चलूंगा। मैं आपको अपनी नई मोटरपर बैठाकर ले चलूंगा।"

"नहीं, नहीं, मैं किसीको अपने साथ न ले जाऊँगा। मैं अलग जाऊँगा तुम लोग अलग जाओ।"

पत्नीने कहा—यह न होगा। इस उमूमें मैं तुम्हें अकेला नहीं छोड़ सकती।

चौधरी साहब मुस्कराये—क्या तुम्हारा ख्याल है कि गांवकी किसी सुन्दरीके रूप-जालमें फँसकर मैं तुम्हें भूल जाऊँगा।

"तुम्हारा कुछ ठीक नहीं।" वृद्धा पत्नीने युवतीके समान भौंहें चढ़ाकर कहा।

"अच्छा तो तुम दोनों चलो। पर और किसीको साथ न ले चलूंगा।" और कोई तैयार भी नहीं हुआ।

चौधरी साहबके रवाना होनेसे आठ रोज पहले ही उनके नौकर-चाकर उस गांवमें पहुँच गये। एक बागमें डेरे खड़े किये गये, चांदनी तानी गयी, एक पुराने कुएँको पानीके लिये साफ किया गया और सारे गांवमें शोर मच गया कि चौधरी गोपीनाथ उस गांवकी सैर करने आ रहे हैं। गांववाले उनके आनेकी उत्सुकतासे राह देखने लगे।

अन्तमें चौधरी साहबके आनेका दिन आया। गांवके लोग मर्द, औरतें और बच्चे उनके कैम्पके गिर्द जमा हुए। उनमेंसे राधा, जिसे उन्होंने बेदाग छोड़ दिया था, को छोड़कर और उस गांवके किसी व्यक्तिने हाईकोर्टका जज न देखा था, जजकी बीबी न देखी थी, उसका नाती न देखा था। सबोंमें बड़ा उत्साह था। जो लोग राधासे सीधे मुँह बात भी न करते थे, वे आज उससे पूछ रहे थे—"जज साहब किस तरहके हैं।" और राधा बार-बार अपनी कही गयी कहानीको पुनः दुहरा रही थी। गांववालोंकी देखा-देखी राधाने भी अपना घर साफ किया था—शायद जज साहब उसका भी घर देखने आवें।

कच्ची सड़कपर—दूर गर्दका बादल उठता हुआ दिखाई पड़ा। गांववालोंने कहा—जज साहब आ गये। गांवके लड़के, जो पासके दूसरे गांवमें पढ़ते थे और आज छुट्टीके कारण स्कूल नहीं गये थे, अपने आप वालण्टियर बन गये और भीड़का इन्तजाम करने लगे। "यहां खड़े होओ। यहां बैठो! मोटरके आनेका रास्ता छोड़ो।" गांववालोंने

स्कूलमें पढ़नेवाले अपने उन छोटे बच्चोंको अपनेसे अधिक बुद्धिमान् समझा और उनके कहनेके मुताबिक कायदेसे खड़े हो गये।

बात-की-बातमें वहां एक मोटर आकर खड़ी हो गयी। जज साहबने उसपरसे उतर कर गांववालोंका अभिवादन किया। उन्हींकी भांति उनकी पत्नी और नातीने भी अभिवादन किया और अपने डेरेमें चले गये। वहां उन्होंने अपने शहरी शिष्टाचारके अनुसार एक-एक करके प्रत्येक ग्रामवासीको बुलाया और उससे परिचय किया। इस बीचमें चौधरी साहबकी पत्नीने गांवकी औरतोंको अपने डेरेमें बुलाया और उनसे तरह तरहकी बातें शुरू कीं।

चौधरी साहबका नाती अपने एक नौकरके साथ बन्दूक लेकर शिकार खेलने निकल गया।

(५)

इस तरह चौधरी साहबको उस गांवमें रहते कई दिन बीत गये। इस बीचमें उन्होंने दो बार गांववालोंको दावत दी और हर एकके दरवाजे पर स्वयं एक बार हो आये। उनकी सरलता देखकर गांववालोंमेंसे भी कुछकी हिम्मत यहांतक बढ़ी कि उन्होंने भी चौधरी साहबको अपने यहां दावत दी, जिसे उन्होंने प्रेमसे स्वीकार किया। चौधरी साहब राधाके बारेमें बराबर गांववालोंसे पूछते रहते थे, जिसकी खबर राधाको बराबर मिलती थी। पर उसकी धोती इतनी फटी और मैली थी कि बहुत इच्छा करनेपर भी वह उनके सामने न जा सकी।

चैतके दिन थे। राधाको आधेपर एक महुआका पेड़ फूल बीननेको मिल गया था। यानी जितना वह चुनती थी, उसका आधा जमींदारके

घरमें रख आती थी और आधा अपने घरमें रखती थी। फसल कट जानेसे गांवके मवेशी बन्धनमुक्त हो गये थे, इसलिये मां-बेटी दोनोंको पेड़से गिरे महुओंकी रखवालीमें काफी दौड़-धूप करनी पड़ती थी। इधर जबसे चौधरी साहब गांवमें आये थे, मां-बेटी दोनोंके दिलोंमें बड़ी खुशी थी और उनके हर काममें तेजी आ गयी थी।

एक दिन सबेरे राधा चारपाईपरसे उठ ही रही थी कि उसने देखा कि उसकी बेटी महुओंसे भरा झाबा लेकर घरमें आ गयी है। महुओंको एक तरफ रखते हुए बेटीने कहा—अम्मा मैंने एक बात सोची है। आज जज साहबसे तू भी मुलाकात कर आ। उन्हें थोड़ा-सा ताजा महुआ दे आ! देहातकी चीज है। इसे वे जरूर पसन्द करेंगे। फिर हमारे पास इससे अच्छी और कोई चीज भेंट देनेको है भी तो नहीं।

माने कहा—बेटी तू ही जा! मेरी धोती बिलकुल फटी और मैली है।

"मेरी तो और भी मैली है।"

"मैं तुझे दूसरी धोती दूँगी।"

राधा अपना बाबा आदमके समयका मोर्चासे कमजोर हुआ टीनका सन्दूक खोलने लगी। इस सन्दूकमें उसके कुछ कपड़े—एक चद्दर, एक साड़ी, दो बनियाइनें और एक लहँगा—थे। इस सन्दूकको वह हर साल बरसातमें दो बार खोला करती थी और कपड़ोंको धूपमें सुखाकर फिर बन्द कर देती थी। कपड़े रंगीन थे और यह कहकर कि विधवाको रंगीन कपड़े न पहनना चाहिये, वह उन्हें रख देती थी। पर असल बात यह थी कि इन कपड़ोंको उसने अपनी लड़कीके लिये रख छोड़ा था। यही उसकी आखिरी सम्पत्ति बची थी जिसे वह बिदाके समय अपनी बेटीको

देना चाहती थी। एक दिन लड़कीके पहन लेनेसे कपड़े खराब न हो जायेंगे। यही सोचकर उसने सन्दूक खोला था।

माकी सलाह बेटीको पसन्द आ गयी। उसने स्नान किया, बालोंमें कंघी की, बनियाइन पहना, लहँगा पहना और ऊपरसे ओढ़नी ओढ़ ली। ज्यों-ज्यों बेटी ये कपड़े पहन रही थी, त्यों-त्यों राधाका मन हुलस रहा था। उसे उन दिनोंकी याद आयी जब इन्हीं कपड़ोंको पहन कर वह इस घरमें प्रथम बार आई थी।

मा-बेटी दोनोंने हरे पत्तोंका एक बड़ा-सा दोना बनाया और उसमें छांट-छांटकर अच्छे-अच्छे महुए रखे।

किशोरी, यही उस लड़कीका नाम था, उस दोनेको लेकर घरसे निकली, पर दो ही कदम चलकर फिर लौट आयी। माने पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

"अम्मा! मैंने ऐसे कपड़े कभी नहीं पहने। मुझे शर्म लगती है।"

"किसीके मँगनी थोड़े ही हैं बेटी! तेरे बापके बनवाये हुए हैं। अगर वे जिन्दा होते तो ऐसे कपड़े तू रोज ही पहनती।"

किशोरीने फिर घरके बाहर कदम रखा। इस बार मा उसे काफी दूरतक पहुँचा आई।

चौधरी साहब एक आमके पेड़के नीचे एक आराम कुर्सीपर बैठे गांवोंमें फैली गरीबीपर गौर कर रहे थे। एकाएक किशोरीको सामने खड़ा देखकर वे कुछ चौंके, फिर दोनेकी तरफ इशारा करके पूछा—"इसमें क्या है बेटी।"

"आपके लिये ताजे रसदार महुए।"

"किसने भेजा है।"

"माने, जिसे आपने बेकसूर समझ कर छोड़ दिया था।"

चौधरी साहबने देखा कि लड़कीके हाथ कांप रहे हैं। वे उठकर खड़े हो गये, उसके हाथोंसे महुएका दोना ले लिया और कहा—"बेटी! अन्दर आओ।"

किशोरी उनके पीछे-पीछे तम्बूके अन्दर गयी। चौधरी साहबने वह दोना अपनी पत्नीके सामने रखे हुए एक छोटे मेजपर रख दिया और पत्नीसे उसका परिचय कराया। इसके बाद पत्नीको उन्होंने वह रहस्यपूर्ण फोटो दिखलाया जो उनको इस गांवतक खींच लाया था।

किशोरीका स्वास्थ्य, उसका सौन्दर्य, उसकी सरलता, उसकी विनम्रता देखकर चौधरी साहब चकित रह गये। उन्होंने पूछा—बेटी! तुम्हारी माने तुम्हें कैसे जिन्दा रखा? कैसे पाला? यह लहँगा उसने तुम्हें कब और कितनेमें खरीदा?

उनके इस अन्तिम प्रश्नपर किशोरी रो पड़ी। यह लहँगा मेरे बापने अम्माके वास्ते लिया था। पर अम्माने इसे पहना नहीं। मेरे वास्ते रख छोड़ा। इसी तरह उसने अपना पेट काटकर मुझे खिलाया और जिन्दा रखा।

लड़की धीरे-धीरे अपनी माकी सारी कष्ट-कथा सुना गयी। वह सब तरहके अभावोंमें एक असहाय स्त्रीके जीवन-युद्धकी कहानी थी। चौधरी साहब और उनकी पत्नी दोनों उस कहानीको सुनकर आश्चर्य-चकित रह गये।

(६)

चौधरी साहब और उनकी पत्नी ही नहीं, उनका नाती भी किशोरी के शील-स्वभाव और सौन्दर्यपर मुग्ध हो गया। वह अपनी बन्दूक लिये शिकारकी तलाशमें घूमा करता था और दूरसे, नदीके किनारेसे, किशोरी-को मिट्टीके घड़ेमें पानी लेकर जाते हुए देखा करता था और कभी-कभी उसके करीब आकर उससे बातें कर लेता था।

एक दिन जब किशोरी सिरपर पानीका घड़ा रखे, अपने घर लौट रही थी, चौधरी साहबके नातीने उसके पास जाकर पूछा—"क्यों री! गांवकी लड़की! तेरा व्याह हो गया है?"

किशोरीके गालोंपर लज्जाकी लाली दौड़ गयी। उसने धीरेसे कहा—"नहीं।"

"मेरे साथ शादी करेगी?"

"धत्!" कहते हुए किशोरीने उस चंचल युवकके ऊपर अपने घड़ेसे थोड़ा-सा पानी लेकर फेंक दिया और घर लौटी। घर पहुँचनेपर उसने अपनी मासे सारा हाल कह सुनाया। माने एक दीर्घ-निःश्वास लिया और कहा—यह सम्भव नहीं है। वे शहरके धनी-मानी, पढ़े-लिखे व्यक्ति और तू गांवकी गँवार लड़की।

धीरे-धीरे यह बात चौधरी साहबके कानतक पहुँची। उन्होंने इस सम्बन्धमें अपनी पत्नीसे परामर्श किया। पत्नीने अत्यन्त क्रुद्ध होकर इस विवाहके सम्बन्धमें अपनी अस्वीकृति दी। वे नहीं चाहती थीं कि गांवकी गंवार लड़कीसे शादी करके उनके नातीका जीवन चौपट हो जाय। इतना ही नहीं उसी दिन उन्होंने उस गांवसे डेरा कूंच करनेका प्रस्ताव किया।

चलते समय चौधरी साहबने राधाके दरवाजेपर जाकर कहा—"राधा! तुमको याद है, तुमने अदालतमें मुझसे क्या कहा था।"

"हां।"

"क्या?"

"आप मेरी लड़कीको ले लें, उसे जिलावें और मुझे फांसी दे दें।"

"हां, फांसी पानेसे अधिक कष्ट तुमने इस गांवमें भोगा है पर मैं तुम्हारी तारीफ करूंगा कि बिना धनके एक लड़कीको जितना अच्छा बनाया जा सकता था उतना तुमने बनाया है। उसमें धनके अभावसे जो कमी रह गई है उसे मैं पूरी करना चाहता हूँ। बोलो अपनी लड़की मुझे दोगी।"

राधाके मुंहसे बोल न निकले। उसका हृदय आंसूके रूपमें आंखों तक उमड़ आया और मोती बन बन कर सूखे गालोंपर ढरकने लगा। चौधरी साहबको जान पड़ा जैसे वह कहती है—"आपके प्यारसे पाले गये नातीके योग्य यह विपत्तिमें पली लड़की नहीं हो सकती।" चौधरी साहब जैसे उसका आशय ताड़कर बोले—"कोई जरूरी नहीं कि इस लड़कीका मेरे नातीके साथ ब्याह ही हो। मैं तो सिर्फ इसे इतना पढ़ा लिखाकर योग्य बनाना चाहता हूँ कि मेरे घरकी मालकिनको इससे अच्छी लड़की कहीं ढूंढनेसे भी न मिले।"

चौधरी साहबने पत्नीके चेहरेपर क्रोधकी स्पष्ट झलक देखी। पर गांवकी एक गरीब लड़कीको अपने परिवारमें रखकर शिक्षित करनेके पतिके प्रस्तावको वे अस्वीकार न कर सकीं।

चलते समय चौधरी साहबने गांवमें एक पंचायत घर, एक कुआं और एक स्कूल बनवानेकी घोषणा की और जबतक जिन्दा रहे उस गांवमें अक्सर जाते रहे और राधाकी खास तौरसे मदद करते रहे।

किशोरी अब एक स्कूलमें भरती हो गई थी और तेजीसे ऊंचे दरजोंपर चढ़ रही थी। उसने अपनी विनय, शील और सेवासे चौधरी साहबकी पत्नीको बहुत कुछ अपने अनुकूल बना लिया। कभी कभी जब वे उससे बहुत खुश हो जाती थीं तब उसके गालपर एक चपत जमाकर कहती थीं—"जिस डरसे मैंने गांवसे डेरा कूच करनेका हुक्म दिया था उसने यहांतक मेरा पीछा किया और दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है।"

मौसी

"मौसी! मौसी मौ···ओ·····!" बेचारा तीन सालका अबोध बालक तीसरी बार 'मौसी' शब्दका उच्चारण न कर सका। तीसरी बार उसके मुंहसे 'मौ' निकला ही था कि उसके गाल पर मां का एक सख्त तमाचा लगा। 'मौ' का 'ओ' हो गया और मुँह खुला ही रह गया। बालक जोर-जोरसे रोने लगा।

ठाकुर रामगुलाम सिंह, जिनकी उस बालक पर मातासे भी अधिक ममता थी, बगलके कमरेमें कुछ मित्रोंके साथ शतरञ्ज खेल रहे थे। एक ही चालमें वे विपक्षीको मात देने वाले थे। एकाएक बच्चा क्यों रो उठा है, यह जाननेकी प्रबल इच्छा होते हुए भी वे अपनी जगह पर बैठे रहे। कुछ ही मिनटोंका मामला था। उन्होंने सोचा, अब खेल खतम करके ही उठेंगे;

लेकिन बालकका रोना बन्द न हुआ। उसके साथ ही पत्नीके ये वाक्य भी उनके कानमें गूँज उठे—खबरदार! जो अब कभी मौसीको पुकारा!

रामगुलाम सिंह अब अपनी जगह पर बैठे न रह सके। जमी हुई बाजीको ज्योंका त्यों छोड़ कर वे बालककी सहायता करने भीतर पहुँचे। पिताको देखकर बालकने अपनी बाहें फैला दीं और और भी जोरसे रोने लगा।

रामगुलाम सिंह ने रूमालसे बच्चेका आंसू पोंछते हुए कहा—जरा बेचारेके मुलायम गालकी ओर देखो! तुम्हारी पांचों उँगलियोंका निशान बना हुआ है। तुम बच्चेकी मां हो? तुम्हें इस पर दया नहीं आती?

"नहीं! दया करनेका सबक पा चुकी हूँ।"

"तो इसको इसी तरह मारोगी?"

"हां! मारते-मारते मार डालूंगी।"—यह कहनेके साथ ही उनके मुँहसे एक दीर्घ चीत्कार निकली और वे बेहोश होकर धरती पर गिर पड़ीं।

यह उनपर हिस्टीरियाका तीसरा हमला था। रामगुलाम सिंह बच्चेको भूल गये। उसे तुरन्त जमीन पर खड़ा करके पत्नीकी सहायता करने लपके।

(२)

श्रीमती सूरजकुंअरको होश आनेमें देर नहीं लगी। पिछले दो बारके अनुभवोंसे रामगुलाम सिंह यह जान गये थे कि ऐसी हालतमें क्या करना होता है। उन्होंने पत्नीको सावधानीसे पलँग पर लिटा दिया और उनके मस्तक पर तथा गर्दन पर एक खास किस्मका लेप लगाया जो इसी कामके लिए पहलेसे तैयार करके घरमें रख लिया गया था।

आंख खोलते ही सूरजकुंअरको अपने पतिका उदास और थका हुआ सा चेहरा दिखलाई पड़ा। पूर्वकी घटनाका भी उन्हें स्मरण हुआ। उन्हें जान पड़ा जैसे वे अपने पति और पुत्र दोनों पर बहुत बड़ी ज्यादती कर रही हैं। पर वे क्या करें, लाख कोशिश करने पर भी वे अपनेको सँभाल नहीं सकतीं। जो चन्द्रकुंअर उन्हें प्राणोंसे प्यारी थी, जिसको देखकर वे जीती थीं, अब उसीका वे एक क्षण भी घरमें रहना बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। आखिर उसका अपराध क्या है? उसका अपराध! बहुत बड़ा है। वह विश्वासघातिनी है। उसीने आकर उनकी सोनेकी गृहस्थीमें आग लगवाई है। उसके आनेसे पहले सब ठीक था। हाय! उसके आनेसे पहले उन्होंने अपने प्यारे शिशु, अपने कलेजेके टुकड़ेको कभी कोई कड़ी बात भी न कही थी। अब क्या हो? उससे कैसे प्राण बचें?

उन्होंने अपने पतिसे कहा—लाख कोशिश करनेपर भी मैं अपने मनको समझा नहीं सकती। अब इस घरमें मेरा और चन्द्रकुंअरका साथ सम्भव नहीं है। अगर तुम उसे घरसे निकाल नहीं सकते हो तो मैं ही निकल जाऊंगी।

"जो कुछ हो गया उसे भुला दो; परन्तु आजकी तारीखसे अब वह तुम्हें न दिखलाई पड़ेगी।"

"घरसे चली गई?"

"हां।"

"कहां गई?"

"कहीं भी गई हो। इससे क्या? तुम्हारे घरमें अब वह नहीं

है। तुम्हारे सामने अब वह न आयेगी। बच्चा जरूर उसकी याद करेगा। अभी नासमझ बच्चा ही तो है; परन्तु धीरे-धीरे उसे भूल जायगा।"

"बच्चा कहां है?"

"बाहर लड़कोंमें खेल रहा है। ले आऊं क्या?"

"हां!"

रामगुलामसिंह तुरन्त ही बच्चेको घरके अन्दर ले आये। आज उसे नहलाने-धुलानेकी बात कौन कहे, किसीने उसका मुँह भी न धोया था। उसके कपड़े भी न बदले गये थे; परन्तु थोड़ी देर रो-गा कर बालक सब कुछ भूल गया था।

मां को चारपाई पर लेटे देख कर बोला—मैं भी अम्मां पास सोऊँगा।

रामगुलामसिंहने बच्चेको मांके पास लिटा दिया।

सूरजकुँअरने मस्तक पर, सिर पर, छाती, पेट, पीठ, हाथ, पांव पर प्यारसे हाथ फेरते हुए कहा—मुन्नू! भैय्या!! अब तुमको कभी न मारूंगी।

"और पेड़ा दोगी! लड्डू दोगी! मेला ले चलोगी?"

"हां मेरे लाल!"

"अच्छा!" बच्चा मांकी छातीसे चिपक गया और सूरजकुंअरकी आंखोंसे बड़े-बड़े आंसू ढरक कर बिछौने पर गिरने लगे।

(३)

सूरजकुंअर और चन्द्रकुंअर दोनों बहनें थीं। सूरज बड़ी थी और

चन्द्र छोटी। दोनोंमें बड़ा स्नेह था। दोनों सोचा करती थीं कि जब वे बड़ी होंगी और विवाह होनेके बाद अपने-अपने ससुराल चली जायँगी तब एक दूसरीके बगैर कैसे रहेंगी? उनके मां-बाप कहा करते थे कि वे दोनोंकी शादी एक ही घरमें या एक ही पड़ोसमें करेंगे। परन्तु दुर्भाग्यसे दोनों बहनें दो जगह फेंक दी गईं। यह इसलिए हुआ कि उनके मां-बाप उनका विवाह करनेसे पूर्व ही स्वर्ग सिधार गये और यह काम चाचा-चाचीको करना पड़ा। चाचा-चाचीके दिलमें न उन दोनों बहनोंके लिए स्नेह था और न वे खर्च ही करना चाहते थे। उन्होंने उनके बापकी सारी जायदाद अपने कब्जेमें की और सूरजकुँअरकी शादी रामगुलाम सिंहके साथ और चन्द्रकुंअरकी एक बुड्ढे स्टेशन मास्टरके साथ कर दी। रामगुलामसिंहके दिन बिगड़े हुए थे। किसी समयमें उनके बापके पास कई गांव, बाग, तालाब, कुएँ और हाथी, घोड़े भी थे; परन्तु वह सब उनके हाथसे बापके जीवन कालमें ही मुकद्दमें बाजीमें स्वाहा हो गये थे। जब सूरजकुँअर रामगुलामसिंहके घर आई तब उनके पास सिवाय ढहते हुए मकान और थोड़ेसे खेतोंके और कुछ न था। परन्तु विवाहके बाद गांव ही में उन्हें स्कूल मास्टरी मिल गई थी। इससे उनके दिन मजेमें कटने लगे थे।

उधर चन्द्रकुंअरको ससुराल गये पूरे दो वर्ष भी न हुए थे कि बूढ़े स्टेशन मास्टर साहबने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। इसमें सन्देह नहीं कि वे करीब चौदह-पन्द्रह हजार रुपया छोड़कर मरे थे; परन्तु चन्द्र-कुंअरसे भी आयुमें बड़े उनके कई ब्याहे और अनब्याहे लड़के थे। उन रुपयोंके लिए उन बेकार जवानोंमें ही सिर फुड़ौवल होने लगी।

चन्द्रकुंअरको उस घरमें कौन पूछता। उसका वहां टिकना मुश्किल हो गया। उसने अपने चाचा-चाचीकी शरण ली; परन्तु वह जलती कढ़ाई में से निकल कर भट्ठीमें कूदनेके बराबर था।

चन्द्रकुंअरकी इसी दयनीय अवस्थाका समाचार पाकर सूरजकुंअर ने उसे रामगुलामसिंहको भेजकर बुलवाया।

पहले दिन दोनों बहनें एक दूसरेको पाकर बहुत रोईं। दूसरे दिन दोनोंने एक दूसरेसे अपनी-अपनी सुख-दुःखकी कहानी कही। तीसरे दिन वे भविष्यमें किस तरह साथ-साथ प्रेमसे रहेंगी इस बातके मन्सूबे बांधने लगीं।

स्टेशन मास्टर साहबके पास रहते-रहते चन्द्रकुँअर कुछ पढ़ गई थी। वह मामूली हिसाब-किताब सीख गई थी, रामायण और इसी तरह की अन्य पुस्तकें पढ़ सकती थी। चिट्ठी-पत्री लिख सकती थी। बहन-बहनोईके पास जिन दिनों वह आई; उन्हीं दिनों उस गांवमें लड़कियोंका एक स्कूल खुला था। एक बुड्ढा रिटायर्ड पटवारी उसका प्रथम शिक्षक मुकर्रर हुआ था; परन्तु वह इतना बीमार रहता था कि महीनेमें एक-दो दिन भी मुश्किलसे स्कूल खोलता था। रामगुलामसिंहने अपनी पत्नीसे इस बातका जिक्र किया था कि डिप्टी इन्स्पेक्टरके आने पर वे उससे यह कहेंगे कि वह लड़कियोंके स्कूलमें चन्द्रकुंअरको जगह दे दें। डिप्टी साहब उनको बहुत मानते हैं और उनकी बात शायद वे न टालेंगे। उस दिनसे दोनों बहिनें डिप्टी साहबके आनेकी प्रतीक्षा करने लगीं। आखिर वह दिन आया और चन्द्रकुँअरको स्कूलमें जगह मिल गई। उसके प्रेम-व्यवहार, मृदुल स्वभाव, पढ़ानेके ढङ्ग और अनुनय-विनयसे सारे गांवकी

स्त्रियां उससे खुश होकर अपनी-अपनी लड़कियां उसके पास भेजने लगीं। और स्कूल चल निकला।

इस तरह एक साल बड़े मजेमें बीता; परन्तु दूसरे सालसे सूरज-कुँअर उनसे थोड़ा-थोड़ा अप्रसन्न रहने लगीं। उसके मनमें प्रेमकी जगह ईर्षाका उदय हुआ। कुछ तो इसलिये कि चन्द्रका गांव वाले अधिक आदर करते थे और कुछ इसलिये कि चन्द्र उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दरी थी और उसके पतिका झुकाव उसकी तरफ अधिक हो चला था। कई बार ऐसे अवसर आये थे जब रामगुलामसिंहने पत्नीकी बातको सुनी-अनसुनी कर दिया था; किन्तु चन्द्रकुँअरकी बात नहीं टाली थी। सूरजकुँअर सोचने लगी कि उसके घरमें चन्द्रका दावा बढ़ता जाता है और उसको कोई कुछ दिन बाद नौकरानीके समान भी न मानेगा।

इन्हीं दिनों एक घटना घटी। रसोई चन्द्रकुँअर ही करती थी। रामगुलामसिंह खा चुके थे। उनके बाद दोनों बहनें खाने बैठीं। जब खा चुकीं तब सूरजका सिर घूमने लगा। पास पड़ोसके और बादको सारे गांवके लोग जमा हुए। कुछ बुजुर्गोंने जो सिर्फ अधिक आयु होनेके कारण वैद्य मान लिये गये थे, यह घोषित कर दिया कि सूरज-कुँअरको जहर दिया गया है।

तीन-चार कै के बाद सूरजकुँअरका चित्त कुछ शान्त हुआ; परन्तु उसके मनमें यह बात बैठ गई कि उसकी बहन उसको मारकर उसके पति और पुत्रपर कब्जा करना चाहती है। चन्द्रकुँअरने हजार कसमें खाईं, लाख अनुनय-विनय की, करोड़ों आंसू बहाए; परन्तु सूरजकुँअर टससे

मस न हुई। उसने अत्यन्त कठोर स्वरमें कहा—तेरा सिर क्यों नहीं घूमा। मेरा ही सिर क्यों घूमा ? मैं तेरा मतलब समझती हूँ। बुड्ढेको मारकर जवानको अपना मर्द बनाने आई है ?

बहनके मुंहसे ऐसे कठोर शब्द सुनकर चन्द्रकुँअर फूट-फूटकर रोने लगी। परन्तु सूरजकुँअरको उसपर तब भी दया न आई। उसने कहा—खबरदार ! आजसे मेरे बेटेके पास जो गई। और मैं असल बापकी होऊंगी तो तेरा मुंह नहीं देखूंगी।

उसी दिनसे सूरजकुँअर अपनी बहनसे दूर-दूर रहने लगी। खाना वह स्वयं बनाती और बच्चेको उसकी नजरोंसे दूर रखती।

रामगुलामसिंहने सूरजकुँअरको बहुत समझाया। कहा—"शायद मक्खी पड़ गयी हो, या कोई और वजह हो।" पर सूरजकुँअर अपनी बहनको माफ करनेके लिये तैयार न हुई। ऐसी ही उसकी मानसिक स्थिति थी, जब एक दिन उसके बेटेने चन्द्रकुँअरको मौसी कहकर पुकारा था और वह बेटेको मार बैठी थी।

(४)

चन्द्रकुँअर रामगुलामसिंहके घर आकर, अपनी बहनको पाकर, उसके छोटे बच्चेके साथ मन बहलाकर अपने दुःखको भूल गई थी; परन्तु बहनके व्यवहारसे वह फिर ताजा हो उठा। पहले तो उसके मनमें आया कि फिर चाचा-चाचीके यहां चली जाय या और कहीं भाग जाय; परन्तु भावी मुसीबतकी आशङ्कासे घरसे बाहर पैर रखनेका वह साहस न कर सकी।

जिस दिन सूरजकुँअरने मौसीको पुकारनेके कारण अपने अबोध

बच्चेको मारा, उस दिन चन्द्रकुँअरके धैर्यका बांध टूट गया। उसे जान पड़ा जैसे कोई अत्यन्त जबरदस्त पैर उसे उस घरसे बाहर ठेल रहा है और वह अधिक रह नहीं सकती। दो-चार कामकी जरूरी चीजें लेकर वह उठ खड़ी हुई और रामगुलामसिंहके पास जाकर बोली—बहनोई ! जाती हूँ। स्कूलमें एक कोठरी है। अकेली जानके लिये बहुत है। कुछ दिनके बाद किसी दूसरे दूरके गांवमें बदली करा लूंगी। तुम बहनसे कह देना, अब सोच न करें, चन्द्रकुँअर अब उनके निगाहके सामने कभी न आयेगी।

रामगुलामसिंहने अपनी बेहोश पत्नीकी ओर देखा, फिर चन्द्रकुँअरके भयानक चेहरेकी ओर देखा, और अपनी विवशताका अनुमान करके कहा—अच्छा।

इस घटनाके बाद फिर चन्द्रकुँअर उस रास्तेसे नहीं निकली। जैसा कि उसने सोचा था, वह मुन्नूको भूल नहीं सकी। जब कभी वह अपने घरसे बाहर होता वह अपनी बहनकी आंख बचाकर उसे गोदमें ले लेती और प्यार करती; परन्तु छोटा बालक भी समझ गया था कि मांके सामने मौसीका जिक्र अक्षम्य है। इसलिये वह मौसीसे यदाकदा मिलनेका जिक्र मांसे कदापि न करता। धीरे-धीरे सूरजकुँअरको पता चल गया कि चन्द्रकुँअर गांवमें ही है; परन्तु पतिके यह आश्वासन देनेपर कि वह शीघ्र ही बदली करा कर अन्यत्र चली जायगी, उसे कुछ ढाढ़स हुआ। इसके सिवाय पति-पत्नीमें फिर कभी चन्द्रकुँअरके बारेमें कोई बात नहीं हुई।

जिस दिन चन्द्रकुँअरकी बदलीका हुक्म आया उसी दिन होली जली

थी। गांववाले नई फसलकी खुशीमें मस्त होकर फाग गा रहे थे और किसी औरतको रास्तेमें आते-जाते देखते थे तो गन्दे कबीर गाने लगते थे। चन्द्रकुंअर जल्दी-से-जल्दी गांव छोड़ देना चाहती थी; पर होलिहारोंके आतङ्कके कारण उस दिन उसकी स्कूलकी उस कोठरीसे बाहर निकलनेकी हिम्मत न पड़ी।

दो दिन बाद जब गांववालोंका गन्दे फाग गानेका नशा उतरा, वह एक पोटलीमें अपनी कुछ किताबें, पहननेके कपड़े, और दो एक बर्तन बांधकर रवाना हुई। गांवका चौकीदार पोटली लेकर उसे पहुँचाने चला। चलते समय उसके मनमें आया कि मुन्नूको आखिर बार देखती जाय। स्कूलकी बड़ी लड़कियोंसे मालूम हुआ कि मुन्नू खलिहानमें होगा। खलिहान रास्तेमें ही था।

परन्तु गांवके बाहर निकलनेपर जैसे ही उसका ध्यान खलिहानकी तरफ गया उसका सिर घूम गया। खलिहानसे बड़ा ऊंचा धुआं उठ रहा था और शोर-गुल भी खूब हो रहा था। वह तेजीसे खलिहान-की तरफ लपकी। और भी कितने ही आदमी उसे खलिहानकी तरफ भागते हुए नजर आये। कहीं मुन्नू भी आगके बीचमें तो नहीं पड़ गया है? यह ख्याल आते ही चन्द्रकुँअर कांप उठी और पसीनेसे नहा उठी।

"चौकीदार! जल्दी चलो! जल्दी चलो!!"—कहती हुई वह दौड़ने लगी। शादी होनेके बाद दौड़नेका यह पहला ही मौका था। चार ही कदममें हांफ उठी; परन्तु उसने हिम्मत नहीं छोड़ी। उसके पहुँचनेके साथ ही सारा गांव खलिहानपर इकठ्ठा हो गया। चारों तरफ पहाड़ जैसे अनाजके डण्ठलोंके ढेर लगे थे और सब ढेर सुलग रहे थे।

बीचमें कुछ खाली जगह थी वहां लड़कोंका चीत्कार सुनाई पड़ रहा था। धुआं एक भयानक काले बादलकी तरह छा गया था। अधपके अनाजके दाने किसी लम्बे मोरचेपर एक साथ सैकड़ों छूटनेवाली मशीन-गनोंकी तरह पड़पड़ा रहे थे। और मर्द औरत बेतहाशा आगमें कूदेसे पड़ते थे। किसीका लड़का आगसे घिरा था, किसीकी लड़की। सैकड़ों आदमी जमा थे, पर लपटोंके बीचसे उन बच्चोंको निकालनेका किसीको कोई उपाय न सूझता था।

अन्दर जानेका एक ही तङ्ग मार्ग था, परन्तु उसके दोनों किनारोंसे ऊँची लपटें उठ रही थीं। लपटें उठनेसे पहले कुछ लड़के इस मार्गसे निकल आये थे। बेचारे होली जलानेका खेल खेल रहे थे। उन्हें क्या मालूम कि इस मामूली खेलकी यह सजा मिलेगी।

लपटोंके लाल-काले बवण्डरके बीचमें लोगोंने देखा कि मुन्नू खड़ा है। सबके लड़के इधर-उधरसे भाग निकले थे; पर मुन्नू रास्ता न पा सका था और अब असहाय होकर चिल्ला रहा था।

(५)

सूरजकुंअर और रामगुलामसिंह भी घबराए हुए पहुँचे और जो कुछ देखा उससे उनके रहे-सहे होश भी उड़ गए। सूरजकुंअर चिल्लाने लगी—हाय! कोई मेरे मुन्नूको बचाओ! हाय! कोई!...हाय!

एकाएक लोगोंने चन्द्रकुंअरको आगमें धँसते देखा। लपटोंके बीचसे वह तीरके समान निकल गई। उसने मुन्नू को अपनी छातीसे चिपटा लिया और फिर उसी प्रकार बाहर निकल आई। मुन्नू तो बेदाग निकल आया पर चन्द्रकुँअरकी साड़ीमें आग लग गई और उसकी

एड़ीसे चोटीतक धधक उठी। अगर वह शीघ्रताके साथ मुन्नूको जमीनपर उतार न देती तब उसके भी बदनमें आग लग जाती।

सूरजकुँअर यह नज्जारा देखनेके लिये अपने होशमें न रही। उसे फिट आ गयी थी और रामगुलामसिंह उसे एक सुरक्षित स्थानपर लिटाकर अपने बच्चेके लिये व्याकुल हो रहे थे।

जैसे ही चन्द्रकुँअर बच्चेको लेकर बाहर आई, वे उसके पास पहुँचे; परन्तु चन्द्रकुँअरके कपड़ोंमें आग लगी देखकर वे बच्चेको जहांका तहां छोड़कर उसकी सहायता करने दौड़े। एक भीषण चीत्कारके साथ वह जमीनपर गिर गई थी। उसके बदनपर साड़ीका एक साबूत धागा भी न बचा था। चौकीदारने पोटलीसे दूसरी साड़ी निकाल कर उसके बदनपर डाल दी और रामगुलामसिंह एक चारपाईपर लदवा कर उसे उसी स्कूलमें ले आये जिसको घण्टा भर पहले वह छोड़ चुकी थी।

वहां उसको पड़ोसकी स्त्रियोंको सौंपकर वे फिर खलिहानकी तरफ गये। वह उसी तरह जल रहा था। जान पड़ता था एक दाना भी न बचेगा। वहांसे वे अपने बेटे और स्त्रीको उसी तरह चारपाईमें लाद-फांद कर घर लाये।

घर आनेपर सूरजकुँअरको जब होश हुआ तब उसने पूछा—मुन्नू कहां है?

"पासके कमरेमें सो रहा है। जगाऊं?"

"नहीं, सोने दो। पहले यह बताओ वह जी जायगा या नहीं?"

"अरे! उसका बाल भी बांका नहीं हुआ।"

"उसे किसने और कैसे बचाया?"

रामगुलामसिंहने सारी कथा कह सुनाई सिर्फ एक बात छिपा रक्खी कि उसकी मौसीने उसे बचाया है।

पत्नीने पूछा—वह औरत कौन थी?

"पता नहीं?"

"जली तो नहीं।"

"बहुत जल गई है।"

"मैं उसे देखना चाहती हूँ। उसे धन्यवाद देना चाहती हूँ। उसने वह काम किया है जो मैं मां होकर नहीं कर सकी। मुझे उसके पास ले चलो।"

पत्नीका अतिशय हठ देखकर रामगुलामसिंहने असली बात प्रगट कर दी। उन्होंने कहा—वह औरत कोई नहीं, उसकी मौसी थी।

"गलत! वह दूसरेके लिये अपनी जान जोखिममें नहीं डाल सकती।"

परन्तु जब सूरजकुँअरको विश्वास दिलाया गया कि वह उसकी बहन ही थी तब उसकी घृणा उसी खलिहानकी भांति जलकर खाक हो गयी और बहनके लिये उसका पुराना प्रेम फिर उसके हृदयमें उमड़ आया।

वह दौड़ी उस स्कूलमें गई जहां चन्द्रकुँअर पड़ी छटपटा रही थी। उसके निकट पहुँच कर उसकी चारपाईके पास घुटनोंके बल बैठकर बोली—चन्दा! मुझे माफ कर! मैंने तुझे बहुत दुःख दिया।

चन्द्रकुँअरकी आंखें झुलस गयी थीं। होठोंमें बड़े-बड़े छाले पड़

गये थे, सारा बदन बड़े-बड़े छालोंसे ढक गया था। उसने अपनी बहनकी तरफ स्नेह प्रदर्शित करते हुए अपना बायां हाथ बढ़ाया। वह कुछ कम जला था।

सूरजकुँअरने बहनके उस हाथको सावधानीसे पकड़कर चूमा और उसपर बड़े-बड़े आंसू टपकाए—हाय! मैं अपनी बहनको क्यों नहीं पहचान सकी! हाय!

सूरजकुँअरके पीछे ही पीछे रामगुलामसिंह भी अपने बच्चेको लिये हुए आये। बच्चेने पुकार कर कहा—मौसी!

मौसीकी पलकें पहाड़से भी भारी हो रही थीं। वे फिर नहीं ही उठ सकीं। उनके भीतरसे दो बड़े-बड़े मोती बाहर निकले और उसके होंठ हिल कर रह गये।

चन्द्रकुँअरको बचानेकी बहुतेरी कोशिशें की गईं; लेकिन सब व्यर्थ हो गईं। सूरजकुँअरके मनसे बहनके प्रति जो घृणाभाव था, वह हटा, तो उसकी जगह पश्चात्तापने ले ली। वह फिर भी अकेली ही रही। मनुष्यका सोचा हमेशा कब होता है!

खेत की चुड़ैल

दिन भरके कामके बाद, शामको थकान मिटाने और दिल बहलानेके अलग-अलग लोगोंके अलग-अलग तरीके हैं। महेश और उसके साथियोंका तरीका बिलकुल निराला था। ये लोग कुछ रात चढ़ने पर करीबके गांवोंमें जाते और कोई न कोई चीज चुराकर खाते। जबतक पेटमें कुछ चला नहीं जाता वापस न लौटते, चाहे सबेरा ही हो जाता। फागुनके दिनोंमें ये महुएकी चोरी करते, जेठ-असाढ़में आम की, सावन-भादोंमें खीरे और ककड़ी की, क्वार-कार्तिक और अगहनमें ज्वार बाजरेकी बालें चुराते और जाड़ेमें चने मटरकी फलियां। मतलब यह कि खेत और बागमें मौसमके लिहाजसे जो चीज इन्हें मिलतीं, चुराते और खाते।

ये सब मल्लाहोंके लड़के थे और इलाहाबाद जिलेमें यमुनाके किनारे भभउर नामक गांवमें रहते थे। दिन भर ये नाव चलाते या मछली मारते या खेतोंमें काम करते या और किस्मकी मिहनत मजदूरी करते पर शामको सब इकठ्ठा होते और साथ साथ चोरी करने निकलते। महेश इनका नेता था। आस-पासके गांवोंमें बराबर यह शिकायत सुनाई पड़ती कि किसी न किसीके यहां चोरी हो गयी। मगर लाख कोशिश करनेपर भी कोई यह न जान पाता कि चोर कौन है? इसकी एक वजह शायद यह भी थी कि ये लोग एक खेतमें या एक बागमें सिर्फ एक ही बार चोरी करने घुसते थे और अपने कामसे ज्यादाकी चीज नहीं चुराते थे और जिसका नुकसान होता था वहीं उसको मामूली समझकर कोई ख्याल नहीं करता था।

भभउरसे मिला हुआ यमुनाके उस पार एक गांव मझियारी है। उस गांवके लोग अच्छे मिहनती और लठैत होते हैं। महेश और उसके साथियोंकी हिम्मत अभी तक मझियारीकी तरफ कदम रखनेकी नहीं पड़ी थी। लेकिन मझियारीके कछारमें गर्मीके दिनोंमें जो तरबूज होते हैं उनको अपने गांवमें बिकनेके लिये आते देखकर उन सबोंके मुंहमें पानी भर आता था। एक बार हिम्मत करके महेश और उसके साथियोंने तरबूज खानेकी ठानी।

चांदनी रात थी। रातको कोई १० बजा था, नीमके फूलोंकी खुशबू हवामें व्याप्त हो रही थी और बीच-बीचमें कोयलकी कूक रातके सन्नाटेको चीरकर, महेश और उसके साथियोंको और भी ज्यादा हिम्मत और जोशसे भर रही थी।

महेशके एक साथीने कहा—"आखिर हम सब अभी लड़के ही हैं और मझियारीवाले बड़े लठैत होते हैं। अगर उनका सामना हो गया तो मुश्किलसे जिन्दा लौटेंगे।"

महेश बोला—"हमलोगोंको तो सिर्फ तरबूजोंके खेतोंमें जाना है जो गांवसे बहुत दूर है और फिर गांववाले लट्ठ चलानेमें चाहे जितने तेज हों, दौड़नेमें तो हमलोगोंका मुकाबिला नहीं कर सकते। एक तरबूज भी हाथ लग गया तो हमलोग भाग निकलेंगे और खतरेसे बाहर हो जानेपर किसी खेतमें बैठकर इतमीनानसे खायेंगे।"

भभउर और मझियारीके बीचमें यमुनाकी एक पतली धारा बहती है जो गर्मीसे सूख जाती है और पानीकी जगह पर रातको रेतकी सफेदी पानीका भ्रम पैदा कर देती है।

जिस समय महेश और उसके साथी उस रेत पर पहुँचे उस समय चन्द्रमा आकाशमें काफी ऊँचे चढ़ चुका था। खेतोंके बीचमें तक-वार अपनी-अपनी चारपाई पर पड़े खुर्राटे ले रहे थे और वे साफ दिखाई पड़ रहे थे। यह भी तय था कि अगर वे जागते होते तो महेश और उसके साथियोंको देख सकते थे। चारों तरफ साफ मैदान था, चांदनी छिटकी हुई थी, छिपनेके लिए कहीं कोई छोटी-सी झाड़ी भी न थी। महेशके साथियोंकी राय हुई कि लौट चलना चाहिए और कहीं महुआ वगैरह तोड़ कर खाना चाहिये। मगर महेशने कहा—"नहीं आज तो हम तरबूज ही खायेंगे! चाहे हम पकड़े ही क्यों न जायं?"

अभीतक ये लोग कहीं पकड़े भी नहीं गये थे; इसलिये हिम्मत बढ़ी हुई थी। ये पांचों मित्र १४ और १८ सालके बीचमें थे। महेश

सबसे तगड़ा, फुर्तीला और साहसी था। वह १८ सालका था और सबके आगे चल रहा था। तरबूजका पहला खेत उन्होंने छान डाला, उसमें उन्हें एक भी तरबूज न मिला। दूसरे खेतमें दूर पर एक छप्पर बांसों पर खड़ा था। छप्परके नीचे थोड़ी-सी आग थी जो शायद तकवारके तम्बाकू पीनेके लिये थी और उस अंधेरी जगहमें तकवारकी आंख की तरह चमक रही थी। छप्परके बाहर खुलेमें एक चारपाई पड़ी हुई थी उसपर कोई लेटा-सा जान पड़ता था।

महेशने अपने साथियोंसे कहा—"दोस्तो! बढ़ आओ, इस खेतमें जरूर हम लोगोंको अच्छे तरबूज मिलेंगे। कुरियाके अन्दर आग खुली पड़ी है, इससे जान पड़ता है कि तकवार दोबारा तम्बाकू पीनेका इरादा नहीं रखता और रात भरके लिये सो गया।

मगर महेशके साथियोंको आगे बढनेकी हिम्मत न हुई। वे सब खेतके मेड़ पर खड़े हो गये और बोले—"अनजान गांवमें आगे बढनेकी की हिम्मत नहीं पड़ती।"

चांदनी रात होते हुए भी तरबूजकी पत्तियोंकी खेती पर कुछ ऐसी छाया पड़ रही थी कि कहीं कोई तरबूज नजर नहीं आता था। पत्तियों के बीचमें एक जगह पर कुछ गोला-गोला और बहुत काला-सा महेशको दीख पड़ा। उसने सोचा हो न हो यह कोई तरबूज जरूर है। महेश दबे पांवों वहां तक गया और झुक कर उस काली चीजको देखने लगा। महेशको झुका हुआ देखकर उसके साथियोंने समझा कि वह किसी तरबूजके पास पहुँच गया है और उसे तोड़ना ही चाहता है। वे भी दबे पांवों महेशके पास पहुँच गये।

मगर यह क्या! जैसे ही महेशने उस गोली चीजमें हाथ लगाया, एक युवती "चोर पकड़ लिया" कहती हुई उठकर बैठ गई। असलमें महेशने जिस चीजको तरबूज समझा था वह उसी युवतीका सर था। चोरोंको पकड़ने ही के लिये वह पत्तियोंमें छिपकर वहां लेटी थी। उसने अपने दोनों हाथोंसे महेशको पकड़ लिया और बोली—"बस अब भागनेकी कोशिश नहीं करना।"

महेशके साथी यह दृश्य देखकर वहांसे इस तरह भागे जैसे जरा भी खटका होनेपर खेतसे गीदड़ भागते हैं।

महेश चिल्लाने लगा—"दोस्तो! मुझे अकेले मत छोड़ो, ठहरो! ठहरो! यहां कोई नहीं है। यह तो सिर्फ एक औरत है। हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकती।"

मगर दोस्तोंने महेशकी एक भी न सुनी और वह अकेला रह गया। पहले तो महेशने मनमें सोचा कि उस लड़कीसे हाथ छुड़ा ले और वह भी अपने साथियोंके पीछे भाग निकले। मगर जीवनमें यह पहला ही मौका था जब एक लड़कीने इस तरह उसका हाथ पकड़ा था। उसने सोचा कि यह कायरता होगी! लड़कीसे हाथ छुड़ाकर भागनेकी अपेक्षा उससे सजा पाना उसने अधिक मुनासिब समझा और बोला—"अच्छा मैं तुम्हारा कैदी हूँ मुझे जो चाहो दण्ड दो।"

(२)

लड़की महेशको पकड़े हुए तरबूजोंके पत्तोंको बचाती हुई, खेतमें संभाल-संभाल कर पांव रखती हुई उस जगह पहुँची जहां खाटपर उसका दादा सो रहा था। लड़कीने हिला डुला कर उसको जगाया और महेश

का हाथ उसके हाथमें पकड़ा दिया। महेशका हाथ अपने हाथमें पाते ही वह आदमी उठ बैठा और बोला, "जान पड़ता है तुम इस गांवके रहने-वाले नहीं हो। जिसमें जरा भी अक्ल है वह चम्पा मल्लाहके खेतमें पैर रखनेकी हिम्मत न करेगा तुम कहांके रहनेवाले हो?'

महेश कुछ डरा हुआ बोला, 'बाबा घर भभउरमें है, और और बहुत-से लोग तरबूज तोड़ने आये थे वे सब भाग गये और मैं अकेला रह गया। मैं चोरी नहीं करता सिर्फ उनके साथ चला आया था।"

महेशने हाथसे अपने गांवकी तरफ इशारा किया।

"अच्छा तो तुम भभउरमें रहते हो। मल्लाह हो।"

"हां।"

तब तो तुम्हें मेरे खेतमें और भी न आना चाहिए था। मल्लाहके लड़केको चोरी करते मैंने यह पहली ही बार देखा है। क्या तुम्हारे मा-बाप तुमको कभी रोकते नहीं?"

महेशने कहा—"दादा आप बिलकुल ठीक कहते हैं, मैं चोरी करनेके इरादेसे नहीं आया था।"

बूढ़ा बोला—"तुम्हारे मा-बाप जिन्दा हैं?"

"हां।"

"मर गये! इसीलिए तुम चोर निकले। क्योंकि अगर मा-बाप जिन्दा होते तो जरूर रोक-थाम करते। खैर तुम्हारे घरमें और कोई है। भाई हैं, बहन हैं, खेत कितने हैं, बाग माल, मवेशी कुछ है?"

महेश बोला—"घरमें सभी कुछ है और हमारे मा-बाप भी जिन्दा हैं।"

बूढ़ेने महेशके चेहरेकी तरफ घूर कर देखा और कहा,—"मुझे अफसोस है कि तुम्हारे कुछ नहीं है। मगर मैं तुमको छोड़ नहीं सकता। तुम्हारे जैसे हट्टे-कट्टे आदमीपर मुझे दया नहीं आती। मेरी ओर देखो, ८४ वर्षका हो गया हूँ। इतना बड़ा शरीर बनानेके लिए तुमको कम से कम २०० वर्ष लगेंगे। मुझमें हिम्मत है और मैं अब भी कम-से-कम एक अच्छे हट्टे-कट्टे नवजवानका मुकाबिला कर सकता हूँ। मेरा दिल अभी नहीं थका है। मुझे अफसोस है कि तुम्हारे कुछ नहीं है, नहीं तो इसी दम चलता और तुम्हारा छप्पर उतार लाता।"

महेशकी समझमें नहीं आया कि यह बूढ़ा क्या कह रहा है और उसकी बातका उलटा अर्थ क्यों लगा रहा है। महेशने उस लड़कीकी ओर देखा जो अब भी उसके पास खड़ी थी। यद्यपि महेशने उस लड़कीसे कहा कुछ नहीं तथापि उसका आशय यह था कि लड़की उसे बूढ़ेके बारेमें कुछ बतलाये।

लड़कीने कहा—"आप डरिये नहीं, सिर्फ हां, हां कहते जाइए। मेरे दादा बिलकुल बहरे हैं इन्हें कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता।"

बूढ़ेने लड़कीकी ओर इशारा करके कहा—"कलावती जरा आग तो जला। रोशनीमें मैं देखूंगा कि यह कौन आदमी है।"

लड़कीने छप्परमेंसे कुछ फूस खींच कर उसे आग पर रक्खा और थोड़ी देर तक उसमें फूंकें मारीं। जब आग जल उठी तब बूढ़ा महेश को झोपड़ीके अन्दर ले गया और उसके चेहरेकी ओर बड़े गौरसे देखा। बूढ़ेने कहा—"कहो क्या चाहते हो। तुमको छोड़ दूँ या सजा दूँ।"

महेश बोला—"मैं आपका कैदी हूँ जो भी आप तय करेंगे मैं मंजूर करूंगा।"

बूढ़ेने कहा—"मैं जानता था कि तुम यही कहोगे कि मुझे छोड़ दो। मगर मैं तुमको छोड़नेवाला नहीं हूँ। तुम बड़ी मुश्किलसे मेरे काबू-में आये हो। तुम्हें मेरी एक बात मंजूर करनी पड़ेगी। जबतक तुम मेरी बात न मानोगे तब तक मैं तुमको छोड़ूंगा नहीं और अगर न मानोगे तो रात बीतनेके पहले मैं तुमको इसी रेतमें गाड़ दूंगा और दूसरे लोग सबेरे तुम्हारा पता भी न पायेंगे।"

बात यह थी कि बुड्ढा महेशको पहचान गया था। उसके साथ वह अपनी नातिनकी शादी करना चाहता था। मगर महेशका बाप किसी तरह राजी न होता था।

महेशने चम्पाकी ओर देखा। शायद वह उसकी कुछ रक्षा करे। उसे अपने साथियोंका ध्यान आया। उसने एक लम्बी निःश्वास ली। उसके यह भी मनमें आया कि वह एकाएक भाग खड़ा हो, मगर फिर सोचा कि शायद इसमें कामयाबी न हो। क्योंकि अब वह बीच खेतमें खड़ा था और रास्तेका उसे पता न था।

"अच्छी बात है तुमको माकूल दंड मिलेगा" कहते हुए बूढ़ा उसे छप्परके बाहर खींचकर ले आया और अपनी चारपाई पर उसे बैठाकर खुद उसके पास बैठ गया और उसके कन्धेपर अपना हाथ धर-कर बोला,—"बोलो तुम यह खेत चाहते हो? तुम तरबूज तोड़ने आये थे। अब मैं तुमको पूरा खेत देना चाहता हूँ हिम्मत है लेने की, बोलो।"

महेशने लड़कीकी ओर देखा। लड़कीने मुस्करादिया और महेशको ऐसा जान पड़ा जैसे उसपर किसीने जादू कर दिया हो।

लड़कीने कहा—"दादा किसीकी सुनते नहीं सिर्फ अपनी ही बकते हैं। आप हां में हां करते जाइए। बस!"

बूढ़ा बोला, 'जानते हो, तरबूज कैसे पैदा होता है। थाले बनाने पड़ते हैं, उनमें अच्छी खाद देनी पड़ती है। जब पौधा बढ़ता है और लतर फेंकता है तब उसकी इस तरह देख-रेख करनी पड़ती है जैसे आदमी अपने बच्चोंकी रखता है। दिनको रात और रातको दिन करना पड़ता है तब कहीं जाकर खेतमें तरबूज देख पड़ते हैं।"

लड़की फिर मुस्कराई और उसके साथ महेश भी मुस्कराया। बुड्ढे ने आगे कहा—"जरा मेरी ओर देखो! मै ८४ वर्षका हो गया हूँ। इस गांवमें इस उम्रके गिने-चुने लोग होंगे। मैं अपनेमें अब भी इतनी ताकत रखता हूँ कि अगर मौत भी आये तो उसको दो लात मार दूं। सिर्फ इसलिए कि मुझको लड़कपन ही से मिहनत करनेकी आदत पड़ गई है। मिहनत करनेसे मैं कभी हार नहीं मानता। मैं अपना खेत खुद जोतता हूँ, पांस डालता हूँ, उसमें अच्छे बीज तलाश कर बोता हूँ। अगर ऐसा मैं न करता तो मेरी भी तुम्हारी तरह चोरी करनेकी आदत पड़ी रहती और तुम्हारी तरह या तो चार बातें सुनता या जेलखानेमें सड़कर मर जाता।"

महेशने बूढ़ेसे बहस फिजूल समझी और सर हिला दिया।

"अब ठीक है।" लड़की बोली।

महेशके इस व्यवहारसे बूढ़ा बहुत खुश हुआ और लड़कीसे बोला,

"कलावती! इससे पूछो, अगर यह भूखा हो तो इसे कुछ खानेको दिया जाय। मेरा एक लड़का इसीके बराबर होकर मरा था इसीलिए मुझको इसके ऊपर दया भी आती है।"

बूढ़ेकी आंखोंमें आंसू आ गये और वह अपने कमरसे फटी धोती का छोर खोलकर उसे आंखोंके पास ले जानेकी कोशिश करने लगा।

(३)

दूसरे दिन सबेरे जब महेश भभउर नहीं पहुँचा तब उसके चारों साथियोंको कुछ चिन्ता हुई और उन्हें अपनी कायरतापर पश्चात्ताप भी हुआ। वे महेशका पता लगानेकी तरकीब सोचने लगे।

महेशके घरमें इस सम्बन्धमें कुछ कहना उन लोगोंने मुनासिब नहीं समझा। उसके बारेमें गांवमें किसीसे जिक्र करनेके पहले उन्होंने खुद एक बार उस जगहपर जानेका इरादा किया जहां वे महेशको छोड़ आये थे।

उन सबोंने मुसाफिरोंका भेष बनाया। एकने कांधेपर लोटा और डोरी रखा, दूसरेने कपड़ेमें मिट्टी बांधकर उसकी एक पोटली बनाई और उसे सरपर रखा तीसरेने सूतके बने हुए एक थैलेमें कुछ कच्चे आम लिये और चौथेने सुरती और सुपारीकी थैली हाथमें ली और सुरती मलता हुआ चला।

धीरे-धीरे ये लोग उसी खेतपर आये और खेतोंके बीचसे गुजरने लगे। खेतमें सन्नाटा था और नामको भी कहीं कोई आदमी दिखाई नहीं पड़ता था। उन लोगोंने कहा कि दिनमें रातकी अपेक्षा तरबूजकी चोरी करना अच्छा जान पड़ता है। क्योंकि ढूंढ़ेसे भी कोई आदमी

दिखाई नहीं पड़ता। मगर इन सबका ध्यान इस समय तरबूजकी चोरी की ओर नहीं था। ये सब अपने साथीके लिये चिन्तित थे, उसीका पता लगा रहे थे और उसके लिये इधर-उधर आंखें दौड़ा रहे थे। ये धीरे-धीरे चक्कर लगाने लगे परन्तु इनको कहीं भी महेशके पैरों तकके निशान न मिले। उस छप्परके नीचे भी ये गये जिसमें रातको तकवार की आंखकी तरह आगकी चिनगारी चमक रही थी। वहां तम्बाकूकी कुछ जठी पड़ी थी और एक कोनेमें राखका ढेर लगा हुआ था। बहुत देर तक ये लोग छप्परके नीचे खड़े रहे। इनका इरादा यह था कि कोई इधरसे निकले तब ये पूछें कि यह किसका खेत है, ताकि महेशके बारेमें कुछ मालूम हो सके!

मगर वहां कोई न मिला। तब ये और आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर आमके बागकी आड़में एक पुरवा इन्हें मिला। यह पुरवा भी मझियारी गांवमें लगता है और इसमें अधिकतर मल्लाह रहते हैं। चूंकि ये सब मल्लाहके ही लड़के थे इसलिये इस पुरवामें जानेसे इन्हें कोई भी भय नहीं लगा। पहले ही घरके दरवाजेपर उनको एक लड़की खड़ी हुई मिली। उसकी आकृति कुछ कुछ वैसी ही थी जैसी कि उन्होंने रातको तरबूजके खेतमें देखी थी। हिम्मत करके ये लोग उसके द्वारतक गये और लड़कीसे पूछने लगे "सोतेके पास जो तरबूजोंके खेत हैं वे किसके हैं?"

"क्यों, क्या आज रात तरबूज तोड़ने आओगे।" लड़कीने मुस्करा कर पूछा।

"नहीं नहीं हम मल्लाहोंके लड़के हैं! मल्लाह कभी चोरी नहीं

करते। हमारा एक साथी उस रास्तेसे कल मझियारी जा रहा था, उसके साथ कुछ और भी आदमी थे। उन आदमियोंका कहना कि "उस खेतमें एक चुड़ैलने उसे पकड़ लिया।"

"वह चुड़ैल मैं ही हूँ।" लड़कीने मुस्कराते हुए कहा। महेशके सब साथी भी हंस पड़े।

इसी बीचमें वह बुड्ढा मल्लाह भी वहां आ पहुँचा और बोला, "तुम लोग कौन हो जो मेरी नातिनको इस तरह बहका रहे हो। अब मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है। मुझे बहुत अच्छा लड़का मिल गया। भागो यहांसे।"

मकानके अन्दर उन्हें महेश दिखाई पड़ा और वे सब चिल्लाये—"महेश! महेश!" इशारोंसे बूढ़ेको पता चल गया कि वे सब महेश के साथी हैं। बूढ़ेने उन सबोंसे कहा, अच्छा तुम सब भी मल्लाहोंके लड़के हो, भभउरमें रहते हो? खैर तुमको मालूम हो कि मैंने अपनी नातिनकी शादी तय कर ली है और वह इसी चोरके साथ होगी।"

बूढ़ेने महेशकी पीठपर जोरका एक घूंसा मारा। दरवाजेपर खड़ी हुई उसकी नातिन मुस्करा उठी और उसके साथी बोले,—"महेश तुम्हें चोरीकी अच्छी सजा मिली।"

गरीब की मुसीबत

मैकू अपने बड़े-से-बड़े दुखको, बड़े-से-बड़े भयको, गांजेके साथ चिलमपर रखकर फूंक देता था। लेकिन जब कभी सुखिया बिगड़ती थी तब वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता था और उसे ऐसा जान पड़ता था जैसे वह पानीमें डूबनेपर भी न बचेगा।

आज जब, वह करीब २० घरका पानी भरकर थका-मांदा शामको घर लौटा और पीपलके पेड़के नीचेवाले बाबाजीकी चिलमकी गन्ध मिली, तब वह स्वभावतः उस ओर दो फूंक मारनेके लिये खिंच गया।

मैकूने हाथमें चिलम ली ही थी कि सुखिया वहां जा पहुँची। मैकूके साथ ही साथ उसने २० घरका पानी भरा था। उसनेभी कमर तोड़ी थी। जब उसे थकान मिटानेके लिये गांजेकी फूँककी जरूरत नहीं पड़ती

तब मैकू हीको क्यों जरूरत पड़े ? आज कई और कारणोंसे भी वह भरी हुई थी। वहां पहुँचते ही उबल पड़ी।

उस समय बाबाजीके पास कई गंजेड़ी जमा थे। एक बार चिलम सुलग चुकी थी, दूसरी बार सुलगाई जा रही थीं। कितनों ही की आखें चढ़ गई थीं और सुर्ख हो रही थीं। मैकूने अभी दम नहीं लगाया था। मुखियाको देखते ही उसके होश उड़ गये और वह चिलम हाथमें लिये ही रह गया।

मैकूके बगलमें एक धोबी बैठा था। उसने चिलम मैकूके हाथसे ले ली, धुवांका एक गहरा गफ्फा खींचा और धीरे-धीरे उसे मैकूके मुंहकी तरफ उड़ाया। कुछ धुंवा मैकूकी भी नाकके अन्दर गया और उसको कुछ चेतनता भी आई, लेकिन उसमें फिरसे चिलम हाथमें लेनेका साहस न पैदा हुआ।

उसने मुखियासे कहा—"घर चल, यहां इस तरह तुझको लड़ते-झगड़ते देखकर लोग क्या कहेंगे।"

मुखियाने कहा—"मैं किसीसे डरती नहीं, और न अब मुझे किसी से लज्जा ही है। हाथ-पांव सब सूने हैं, नाकमें लोहेकी कील भी नहीं है, जब मेरा यह भेष देखकर तुमको शर्म नहीं लगती और न तुमको कोई फिक्र ही होती है तो मैं ही कहांतक मन मारे बैठी रहूँ ? मैं साफ-साफ बताये देती हूँ, मैं आजसे तुम्हारे घर न रहूँगी—मैं अपने पीहर जा रही हूँ। तुम्हारा लड़का गांवमें कहीं खेल रहा होगा। खुशी होगी उसको संभालना और खुशी होगी न संभालना।"

मुखिया वहांसे अपने घरकी ओर घूम पड़ी। मैकूसे अब बैठे न रहा

गया। भावी भयकी आशंकासे वह भी उठ खड़ा हुआ और उसके पीछे-पीछे इस तरह चल पड़ा जिस तरह गुनसे बंधी हुई नाव किसी मल्लाहके पीछे-पीछे चलती है।

गंजेड़ियोंमेंसे एकने कहा—"यह औरत साक्षात कालिका है, मैकूका प्राण ले करके ही मानेगी।"

फिर सबोंने मिलकर मैकूके सीधेपन की, और उसकी स्त्रीकी उद्दण्डताकी चर्चा की; और गांजेके गफ्फे लगानेमें तल्लीन हो गये।

(२)

घर पहुँचकर मुखियाने अपने बल्लेके पिटारेको खोला। इसमेंसे काजरकी एक डिबिया, घराऊं जम्फर और मैली रंगीन साड़ी निकाली। काजरकी डिबियाको साड़ीके खूटमें बांधा और साड़ी जम्फर दोनोंको बगलमें दबाकर घरसे बाहर निकल पड़ी।

इस समय मुखियाको मनाना मैकूके लिये एक विकट समस्या थी। उसने पड़ोसियोंको आवाज लगायी। अपनी अंधी और बुढ़िया मांको मकानके भीतरसे बाहर ले आकर बिठाया। बुढ़िया मुखियाके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी और बोली—"इस बार माफ कर दे, जैसा तू कहेगी, वैसा ही वह करेगा। बैसाखका महीना है। फसल कट कर खलिहानमें आ गयी है। यही दिन हैं, जब कि किसानके घर चार दाना पहुँचेगा और उसमेंसे दो दाना हमको भी मिलेगा। अगर इस मौकेपर तू चली गयी, तो वह दुखिया मांकी सेवा करेगा या बच्चेको पालेगा या पानी भरेगा या गल्ला इकट्ठा करेगा ? अच्छी तरह समझ कर देख, इस तरह तेरे चले जानेसे मेरी बनायी गृहस्थी बिगड़ जायगी।"

मुखियाने उच्च स्वरसे गरज कर कहा—"तुम्हारी गृहस्थीमें क्या रा है ? अगर धरा भी होगा तो फौरन गांजा खरीद कर चिलमपर रख कर उड़ा देंगे।"

मैकूने जवाब दिया—"तेरी कसम, मैंने अपने पैसेसे एक रोज भी गांजा नहीं पिया। वहां चला जाता हूँ, एक कोनेमें चुपचाप बैठा रहता हूँ। अगर कोई मेरी तरफ भी चिलम बढ़ा देता है तो ले लेता हूँ, नहीं तो चुपचाप लौट आता हूँ।"

मैकूने इस बातको अत्यन्त दीन-भावसे कहा था। उसके चेहरेपर वास्तवमें बेबसी और चिन्ताके चिन्ह थे। उसका खयाल था कि उसके दीन मुखकी ओर एक बार देखकर मुखिया उसे क्षमा कर देगी। लेकिन ऐसा न हुआ। मुखियाने उसी निर्दय-भावसे फिर गरज कर कहा—"नहीं! नहीं!! अबकी तुम्हारा मुख नहीं देखूंगी।"

उसी समय मैकूकी बुढ़िया मां उठकर लड़खड़ाती हुई पतोहूके पैरोंसे लिपट गयी और बोली—"रानी! दया कर। हमारे घरकी तू ही लक्ष्मी है। तेरे इस तरह रूठकर चले जानेसे तो मुझे जो दो कौर खानेको मिलता है वह भी न मिलेगा और बेचारा बचा तो भूखों मर जायगा।"

बुढ़ियाका कहना सच था। क्योंकि मुखिया चाहे जो हो, रात दिनमें एक बार खाना जरूर बनाती थी और सबसे पहले बुढ़ियाको दो गरम रोटियां खानेको देती थी। लेकिन उस समय मुखियाका पारा बहुत चढ़ा हुआ था। उसने तिरस्कारपूर्वक बुढ़ियाको झिड़ककर अलग कर दिया और आगे कदम बढ़ाया।

मैकूका लड़का अभी चार सालका भी पूरा नहीं हुआ था तो भी मां-बापके साथ नंगा-धड़ङ्गा हर घरमें जाता था और कभी जब अपने सरपर एक लोटा या गिलास भर पानी रख लेता था, तब मां-बापके साथ उसका मटक-मटक कर चलना बहुत अच्छा लगता था।

मुखिया जब किसी तरह राजी होती न दिखाई दी, तब मैकू दौड़कर पासहीके रास्तेमें खेलते हुए अपने लड़केको पकड़ लाया और मुखियाके सामने खड़ा करके बोला—"मेरा न सही तो ले! इस भोले बच्चेका ही खयाल करके इस समय तू न जा।"

मुखियाने डाटकर कहा—"इसे आगमें भूनकर खा जाओ"

मांके इस तिरस्कार और उपेक्षासे लड़का रो उठा और अपनी बुढ़िया दादीकी गोदमें जाकर सिसकने लगा।

इस बीचमें पास-पड़ोसके घरोंके लोग वहां आकर जमा हो गये थे। मैकूने उन सबोंसे अपील की कि वे मुखियाको समझावें।

गांववालोंमेंसे एकने कहा—"मैकू तुमने अपनी औरतको सरपर चढ़ा लिया है। जितना तुम इसकी खुशामद करते हो उतनी ही यह बिगड़ती जाती है। रहने दो इसकी खुशामद करनेको। तुम कहारके बेटे हो! तुमको दूसरी कहारिन मिल सकती है। इसको जाने दो।"

पड़ोसियोंके इस कथनसे मुखियाका पारा और भी गर्म हो गया। उसने कहा—"बहुत खुशीसे, एक नहीं दो कहारिनें लाकर बिठा लें। दोनों घरमें आग लगाकर इसे अच्छी तरह भूनेंगी और पड़ोस भी जलेगा। बाहर-ही-बाहर मैं यह चर्चा सुनकर खुश होऊँगी।"

मैकू दोनों हाथोंसे अपने सरको पकड़ कर बैठ गया और मुखियाके

इस प्रकार इतना नाराज होनेका कारण सोचने लगा। मुखिया हमेशा किसी-न-किसी कारणको लेकर ही नाराज हुआ करती थी, लेकिन इस बारके कारणको ढूंढनेमें मैकूको बहुत देर लगी। मुखियाका स्वभाव यह था कि वह बताती कुछ न थी। वह चाहती थी कि मैकू उसके मनकी बात समझे और वैसा करने लगे। दोनों हाथोंसे अपने दिमागको बहुत जोरसे दबाकर मैकू बैठा-बैठा कारण सोचने लगा कि आखिर मुखिया इस कदर क्यों नाराज है ?

ख्याल दौड़ाते-दौड़ाते उसकी समझमें आया कि दो-तीन दिन पहले मुखियाने एक नयी साड़ी और कुछ गहनें बनवानेके लिये आग्रह किया था।

मैकूने मन-ही-मन सोचा कि मुखिया सब कुछ जानते हुए भी इतना अनजान क्यों बनी हुई है ? मैं जो कुछ भी पाता हूँ वह सब ले आकर उसीके हाथपर रख देता हूँ। कुछ भी छिपाकर नहीं रखता हूँ। घरकी वह मालकिन है, जो चाहे कर सकती है। अगर कोई चीज प्राप्त नहीं हैं तो इसकी वजह है, हमारी बेबसी। घरमें चीजोंका अभाव है। अगर मेरे पास कोई चीज हो और वह मुखियाको न दूँ तो एक बात भी है।

सबसे अधिक दुःख मैकूको यह था कि घरकी स्थितिको जानते हुए भी मुखिया गहने और कपड़ेके लिये इस तरह जिद्द कर बैठी थी।

मैकूने मुखियाकी तीन-चार दिन पहलेकी बातको याद कर पड़ोसियों को सम्बोधित करते हुए कहा—भाइयो ! मैं समझ गया कि आज मुखिया इस कदर क्यों नाराज है ? इसके भाईके लड़केकी शादी होने-

वाली है। उसमें इसको शरीक होना है। इसने मुझसे एक साड़ी मांगी है, और कुछ गहने भी चाहती है। मैं मानता हूँ कि मेरा यह कसूर जरूर है कि पिताकी बीमारीमें इसके दो-चार गहने गिरवी रखकर मैंने काम चलाया था। अभी तक मेरे पास रुपये नहीं जमा हुए कि उसके गहनोंको छुड़ाऊँ। आजकल हालत और भी खराब है। मुखिया जानती है कि आजकल मेरे पास एक पाई भी नहीं है। फिर उसने बहुत गिड़गिड़ाकर कहा कि अगर मेरे खूनके बदलेमें भी कहींसे इसको साड़ी और गहने मिल सकें तो मैं लोटा-दो लोटा खून बहानेके लिए भी तैयार हूँ।

"चल रहने दे।"—मुखियाने अपने पड़ोसियोंसे कहा—"असल बात यह है कि अब इनकी मेरी न निभेगी। अब इसीमें मेरा और इनका भला है कि मैं इनका मुंह न देखूँ और ये मेरा मुंह न देखें।"

मुखियाने अजीब तरहसे अपनी बांहोंको झटका, उँगलियोंको चट-काया और वहांसे चल पड़ी।

गांववालोंमें से किसीने उसे नहीं रोका। मैकूकी मां जोरसे चीख उठी और वह बच्चा भी जोरसे चिल्लाया।

मुखियाने पीछे मुड़कर उनकी ओर गुस्सेमें देखा और व्यङ्गके साथ कहा—"मरो।"

गांववाले मुखिया और मैकूके इस तरहके झगड़ोंको रोज ही देखा करते थे और वे इस तरहके दृश्योंके अभ्यस्त हो चुके थे और ऊब गये थे।

एक आदमीने कहा—"चलो अच्छा हुआ। कुछ दिनके लिए चली जाय तो शान्ति तो मिलेगी।"

मगर मैकूको यह बात पसन्द न आई, वह उठाकर फिर मुखियाके पीछे-पीछे पहले कुछ धीरे-धीरे और फिर जोरसे चलने लगा।

(३)

इस प्रकार पति-पत्नी जब गांवके बाहर कुछ दूर निकल गये और एक पीपलके पेड़के नीचे पहुँचे तब मुखियाने पीछे मुड़ कर देखा और मैकूसे कहा—"लौट जाओ।"

मैकूने गिड़गिड़ाकर कहा। "मुखिया सुन! मुझे दो दिनका मौका और दे! और बता कि कितनेमें तेरे जीको तसल्ली होगी।"

मुखिया पेड़के नीचे टांग फैलाकर बैठ गई और बोली—"मेरे जितने गहने गिरवी रक्खे हैं वे सब चाहिए। हँसुली है, हबेल है, कड़े हैं और झांझ है। उनके बगैर मुझे चैन नहीं। पहननेके लिए मुझे एक अच्छी नई साड़ी भी मिलनी चाहिए। कोई नये गहने गढ़ानेको नहीं कहती हूँ। जो चीज अपने बापके घरसे लाई थी वही मांगती हूँ। ऐसे मरे हो कि सालमें एक जोड़ा धोती भी नहीं दे सकते? जाओ इतनी चीजें ले आओ! तब मैं यहांसे उठूंगी, नहीं तो इसी पेड़के नीचे बैठी रहूँगी।"

मैकूने कहा—"अब जब तुमने मुझे दो दिनकी मुहलत दी है तब इस पेड़के नीचे बैठनेमें क्या है? घरमें चलकर बैठो! अगर दो दिनमें तुम्हारे गहने वापस न ला सकूंगा तो जो तुम्हारे मन आये सो करना।"

इस तरह पति-पत्नी दोनों उस पेड़के नीचे बैठे बातें करते रहे। एक दूसरेको खरी-खोटी सुनाते रहे और एक दूसरेको कोसते रहे। जब काफी रात हो गई और गांवके आधेसे ज्यादा लोग सो गये तब वे दोनों लौट कर अपने घर आये।

(४)

दूसरे दिन सबेरा होते ही मैकू उस महाजनके घर पर गया जिसके यहां उसने मुखियाके गहने गिरवीं रक्खे थे और उसने कहा कि अधिक नहीं तो कमसे कम चार दिनके लिए मुखियाके गहने दे दो। चार दिन के बाद गहने तुम्हारे यहां दे जाऊँगा और ब्याजमें कुछ अधिक रुपया कस लो। मगर महाजन किसी तरह राजी न हुआ।

लाचार होकर मैकू एक-एक करके अपने सब मालिकोंके घर गया और सबकी बहुओंसे उसने उतने ही गहने मांगे जितने कि मुखियाने मांगे थे। मगर कोई किसी तरह राजी न हुई।

इस तरह एक दिन बीत गया। अब मैकूके पास एक दिन और था और उसे चारों तरफसे निराशा दिखाई पड़ती थी। दूसरे दिन जब वह अपनी बहँगी लेकर पानी भरनेके लिए निकला तब उसे जान पड़ा जैसे उसके पैरोंमें शक्ति नहीं है। उसके जीवनमें कोई उत्साह नहीं है। वह शिथिल होता जा रहा था। पहला घर पानी भरनेके बाद दूसरा घर गांवके महाजन सेठ धर्मावतारका था। उनके आंगनमें पहुँच कर मैकू निर्बल-सा होकर बैठ गया और हांफने लगा। सेठ जी उस समय सौदा लेकर पासके गांवमें लगनेवाले बाजारमें बेचनेके लिए गये हुए थे। सेठानी ने मैकूकी यह गति देखकर पूछा—"मैकू तुझे यह क्या हो गया है?"

मैकूने अपनी सारी रामकहानी कह सुनाई। सेठानीको मैकू पर बड़ी दया आई। उसके जीमें आया कि वह मैकूके गहने उठाकर उसे दे दे। पर साहस न हुआ। कुछ सोचकर उसने कहा—"तू वादा कर कि जितना ब्याज अपने सारे गहनेका सेठजी को देता है, उतना ही ब्याज मुझको

भी देगा और थोड़ा-थोड़ा करके मूलधन भी चुकानेका वादा करेगा तो मैं तेरे गहने अपनी ओरसे तुझे दे दूँगी। लेकिन देख, कभी किसीसे इस बातका जिक्र न करना।"

मैकूने यह सुना था कि सेठानीजी बहुत उदार हैं और गरीबोंकी सदा मदद करती हैं, पर आज उसे अपने जीवनमें यह पहला ही मौका था, जब कि सेठानीकी उदारता और दयाका उसे अनुभव होने जा रहा था।

वह दोनों हाथ जोड़कर सेठानीके सामने खड़ा हो गया और बार-बार उनके पैरोंके करीब जमीन पर माथा रखने लगा और बोला—"जैसा कहेंगी वैसा ही करूंगा।"

"अच्छी बात है"—सेठानीने कहा—"मैकू, देख! तू मेरे यहां ठीक चिराग जलने पर आ जाना! मैं तुझे हँसुली, हवेल, कड़े, झांझ और एक साड़ी भी दूंगी। इन चीजोंको बहुत हिफाजतसे रखना। मगर एक शर्त और है।"

मैकूने उत्सुकतासे पूछा—"वह क्या?"

सेठानीने कहा—"तुझे गांजा पीना बिलकुल छोड़ देना पड़ेगा, क्योंकि मेरी गंजेड़ियोंके साथ लेन-देन करनेकी हिम्मत नहीं होती है।"

मैकूने गिड़गिड़ाकर कहा—"मैया! जैसी बात कहती हैं वैसा ही करूंगा, आजसे गांजेके करीब ही न जाऊंगा।"

"अच्छी बात है, शामको आना।"

सेठानीके इस कथनसे मैकूमें फिर पूर्ववत् शक्ति आ गई। जैसे किसीने जादूकी लकड़ीसे उसे छू दिया हो और उसकी सारी थकान हर ली हो।

वह बहँगी उठाकर पानी भरनेके लिए फिर जाने लगा, दरवाजा तक ही पहुँचा था कि सेठानीने पुकार कर कहा—"मैकू जरा और सुन! एक शर्त और है।"

"वह क्या?"—मैकूने अत्यन्त विनीत भावसे पूछा।

"तुझे अपना लड़का मेरे घरमें रख देना होगा। वह यहीं खायेगा, यहीं रहेगा, और जो काम उससे होगा वह मैं उससे काम भी लूंगी। क्योंकि अगर तुम गहना लेकर कहीं भाग जाओ या चले जाओ तो मैं तुमसे कैसे वसूल कर सकती हूँ? हां, यह जरूर है कि तुम और सुखिया दोनों यहां आकर अपने बच्चेको रोज देख सकते हो।"

मैकूको ऐसा जान पड़ा जैसे उसके पैरोंके नीचेसे धरती खिसक गई हो। मगर चूंकि उसे सुखियाकी इच्छा पूरी करनी थी, और उसकी इच्छा पूरी करनेके लिए वह अपना सर्वस्व त्यागनेके लिए तैयार था। और उसके पास सबसे प्यारी वस्तु उसका पुत्र ही था, इसलिए मैकूने सेठानी की यह बात सहर्ष स्वीकार कर ली और पानी भरनेके लिए कन्धे पर बहँगी लिये हुए निकल पड़ा। अब यद्यपि उसके चेहरे पर वह दमक न थी जो क्षण भर पहले आ गई थी तथापि उसमें काम करनेकी शक्ति आ गई थी।

(५)

चिराग जलनेपर मैकूने सेठानीके यहांसे सब चीजें ले जाकर सुखियाके हवाले कर दीं और अपने छोटे बच्चेको फुसलाकर सेठानीके यहां कर दिया।

चलते समय उसने अपने बच्चेको चूमा और उससे कहा—"बेटा,

अब आजसे तेरी अम्मा यह हैं। जो कहें वह करना और हमको भूल जाना।" लड़का सेठजीके घरसे वाकिफ था। रोज आता-जाता था और कभी-कभी खाने-पीनेको भी मिल जाता था। इसलिये उसे वहां ठहरनेमें कोई आपत्ति न हुई।

वह सेठानीकी उँगली पकड़कर भोले भावसे कहने लगा—"आज से मेरी अम्मा तुम हो?"

सेठानीने इधर-उधर देखा। जब उन्हें कोई न दिखाई पड़ा तब उन्होंने कहारके उस भोले बालकको अपनी गोदमें उठाकर चूम लिया और कहा—"हां, आजसे तेरी अम्मा मैं हूँ।"

सब कुछ होते हुए भी सेठजीके घरमें एक अभाव था—उनके कोई सन्तान न थी। कहारके कारण सेठानीको अपना यह अभाव पूरा होता जान पड़ा और इस जीवित खिलौनेके लिये उन्होंने जो कुछ उस कहार को दिया था, वह उन्हें कोई बहुत बहुमूल्य वस्तु न जान पड़ी।

गहना पाकर सुखिया बहुत खुश हुई। इतना खुश शायद वह जीवनमें कभी नहीं हुई थी। उसने हवेल पहनी, हंसुली पहनी, हाथोंमें कड़े पहिने, झांझ पहनी, बालोंमें तेल लगाया, कंघी की और बालोंको बांधा। मांगमें सिन्दूर भरा, माथेपर चौड़ी चमकदार टिकुली लगाई और नई साड़ी पहनकर अन्धी सासको प्रणाम किया। जब बहुत रात बीत गई तब उसे बच्चेका ख्याल आया। मैकूसे बोली—"इतनी रात बीत गई, लड़का नहीं आया; पता लगाओ तो कहां है?"

मैकूने कहा—"लड़केकी तू फिक्र मत कर! वह बहुत आरामसे है।"

सुखियाकी त्यौरी चढ़ गई और उसको डपटकर बोली—"तुम्हारी बात समझमें नहीं आती कि क्या कहते हो।"

मैकूने कहा—"उसे सेठ धर्मावतारके घर कर आया हूं। ये गहने मुझे सेठजीसे चोरीमें सेठानीने दिये हैं। उन्हें डर था कि शायद मैं इस गहनेका दाम न चुका सकूं। इसलिये अमानतके तौरपर उन्होंने मेरे लड़केको अपने घरमें रख लिया है। उसे खिलायेंगी, पढ़ायेंगी, लिखायेंगी और प्रेमसे रक्खेंगी। हमारे यहां तो वह अवारा फिरता था। वहां आरामसे रहेगा। इसमें क्या हर्ज है?"

सुखियाको जो प्रसन्नता हुई थी वह विलीन हो गई। अपनी इतनी प्यारी वस्तुके बदले में वह इन गहनोंके लिये तैयार न थी। लेकिन उसे अपने भाईके यहां जाना भी था। इज्जतका सवाल था।

उसने सोचा—मायके जानेतक लड़केके वहां पड़े रहनेमें कोई हर्ज नहीं है। वहांसे वापस आनेपर मजदूरी करके धीरे-धीरे रुपये दे दूंगी और लड़केको छुड़ा लूंगी।

सुखिया अपने मायके चली गई और मैकू उस दिनसे अकेले ही पानी भरने लगा। उसने उस पीपलके नीचे जाना ही बन्द कर दिया, जहां बाबाजी धूनी रमाये हुए बैठे रहते थे। उस दिनसे उसे जो ताजगी गांजेकी एक फूंक लगानेमें मिलती थी वही ताजगी सेठजीके घर पहुँच कर अपने बच्चेको देखने और उसे चूमनेमें मिलने लगी।

दिन भरके कामके बाद वह थका-मांदा सेठजीके घर पहुँचता और उसका लड़का खिलखिलाता हुआ, बप्पा आया, बप्पा आया कहता हुआ दौड़ता और लिपट जाता तो मैकूकी सारी थकान दूर हो जाती

और वह और भी अधिक उत्साहसे दूसरे दिन अपने कामको शुरू करता।

(६)

दिन गुजरते देर नहीं लगती। मुखिया अपने मैकेसे वापस आ गई और पतिके साथ फिर वह अपनी गृहस्थीके कार्यको पूर्ववत् करने लगी।

वादेके अनुसार मैकू और मुखिया दोनोंने मिलकर सेठानीको निश्चित रकम देनेका निश्चय किया और पहले सालके अन्तमें कुछ दिया भी। पर यह थोड़ी पूंजी जमा करना भी उनके वशके बाहरका काम था। तब भी चूंकि वे दोनों अपने जीवनमें खास उद्देश लेकर काम कर रहे थे, इसलिए दोनोंमें झगड़े का बहुत कम अवसर आने लगा। एक दिन जब दोनों पानी भरकर लौटे, मुखिया चूल्हा सुलगाने लगी और मैकू रसोई-घरकी डेहरी पर बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ाने लगा, मुखियाने कहा—"सुनते हो! मुझे अब गहने न चाहिये। मैं अपने बच्चेके लिए व्याकुल हूँ। क्या यह हो सकता है कि सेठानी अपने गहने वापस ले लें और मेरा बच्चा मुझे दे दें।"

मैकूने कहा—"हां, शायद हो तो सकता है।"

उस दिन बात यह हुई थी कि बच्चेने कई बार सेठानीके घरसे मुखिया को मां कह कर आवाज लगाई थी।

मुखिया उसके लिए बहुत व्याकुल हो उठी। जब मैकूने यह कहा कि हां हो तो सकता है, तब मुखियाने कहा—"अच्छा इसी दम उनके यहां गहने लेकर जाओ और बच्चेको वापस ले आओ।"

"अच्छी बात है।"—कहकर मैकू जानेके लिए तैयार होने लगा और मुखिया उस कोठरीमें गई, जिसमें बल्लेकी झाबीमें वे गहने रक्खे हुए थे। मगर यह क्या? वहां तो सफाया था।

मुखियाके रोंगटे खड़े हो गये। वह चक्कर खाकर गिर पड़ी। आहट से मैकू तुरन्त उस कमरेमें पहुँचा। उसने मुखियाके मुंहपर पानी छिड़का और पूछा—"क्या हुआ?"

मुखियाने बताया—"घरमें चोरी हो गई है। अब क्या हो? अब बच्चा किस तरह मिले।" पति-पत्नी दोनों बेहद परेशान हो उठे।

रोते और कलपते हुए दोनों सेठानीके पास पहुँचे और उनसे सारा किस्सा कह सुनाया और कहा कि हमारा बच्चा हमें वापस कर दो। इसके बगैर हम लोग जिन्दा नहीं रह सकते और जिन्दा न रह सकेंगे तो तुम्हारा रुपया भी अदा न कर सकेंगे। हमने आज इरादा किया था कि तुम्हारा गहना वापस कर दें। मगर हमारे घरमें चोरी हो गई।

सेठानीने कहा—"देखो, यह बच्चा मुझे बहुत प्यारा है। अगर वे गहने चोरी चले गये हैं तो मैं तुमको उतने ही या उससे भी ज्यादा गहने देनेके लिए तैयार हूँ, लेकिन तुम इस बच्चेको यहांसे मत ले जाओ।"

मुखिया विह्वल होकर सेठानीके पैरोंपर गिर पड़ी और बोली—"नहीं मां, अब मुझे गहने न चाहिए। मुझे मेरा बच्चा चाहिए। आप मेरा बच्चा मेरे हवाले कर दीजिये।"

इसी समय मैकूका लड़का कहींसे खेलते हुए आया और मां मां कहकर मुखियासे लिपट गया।

मुखियाने आंखोंमें आंसू भर कर अपने बच्चेको अपने दोनों

बांहोंमें आबद्ध कर लिया। "मैं इसे अब कभी नहीं छोड़ूंगी! हरगिज नहीं!"

सेठानीको इस दुखी परिवार पर दया आई और उन्होंने कहा—"मैकू यह लो यह वे रुपये हैं, जो तुमने मुझे गहनोंके ब्याजमें दिये थे। वे गहने असलमें नकली थे। अगर चोरी हो गये तो मेरी बहुत हानि नहीं हुई। मैं तुम दोनोंको सिर्फ यह बतलाना चाहती थी कि घरके प्राणी का मूल्य गहनोंके मूल्यसे ज्यादा है और स्त्रीका सच्चा गहना उसका पति और पुत्र है। यह तुम दोनोंकी समझमें आ गई है। इसलिए अब तुम अपने बच्चेको वापस ले जा सकते हो।"

सेठानीकी आंखोंमें आंसू आ गये। बच्चेका वियोग उन्हें अखर रहा था। पर उन तीनोंका पश्चात्ताप भी तो उनसे नहीं देखा जाता था।

मुखियाने आंखोंमें आंसू भरकर और अपने बच्चेको चूमकर कहा—"मुझे अब असली गहना मिल गया।"

उसने बच्चेको अपने कन्धोंपर बिठाला और सेठजीके घरसे बाहर हो गई। उसके पीछे-पीछे मैकू भी चला, जैसे कि वह हमेशा चला करता था।
